वर्ष ५
पूर्णाङ्क ५५

गुरुकुल पत्रिका

फरवरी
१९५३

व्यवस्थापक
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी।

सम्पादक
श्री सुखदेव दर्शनवाचस्पति
श्री रामेश बेदी आयुर्वेदालंकार।

इस अङ्क में

अगले अंकों में

बालक और भाई बहिन	श्री कुञ्जबिहारी सिंह एम. ए.
प्राकृतिक चिकित्सा और आधुनिक चिकित्सा विज्ञान	श्री डॉ० सुरेन्द्रनाथ गुप्त
दान से चतुमुख वृद्धि	श्री मनोहर विद्यालंकार
पौरव-सिकन्दर युद्ध की एक झांकी	श्री निरञ्जनदेव आयुर्वेदालंकार
साहित्य में पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग	श्री सत्यपाल विद्यालंकार
पौदे जन्तुओं से भिन्न क्यों ?	श्री चम्पत स्वरूप गुप्त

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी रचनाएं।

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ६) वार्षिक

एक प्रति
छः आने

ओ३म्

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

राज्याभिषेक के समय राष्ट्रपति की प्रतिज्ञा

श्री रामनाथ वेदालंकार

यजुर्वेद के दशम अध्याय में राजसूय यज्ञ का वर्णन है। प्रारम्भिक मन्त्रों में राज्य के चुने हुए प्रतिनिधियों की ओर से पुरोहित द्वारा राष्ट्रपति का अभिषेक किया गया है। अन्त में अभिषिक्त राष्ट्रपति सबके सम्मुख प्रतिज्ञा करता हुआ कहता है—

* सविता प्रसवित्रा सरस्वत्या वाचा त्वष्टा रूपैः पूष्णा पशुभिरिन्द्रोऽस्मे बृहस्पतिना ब्रह्मणा वरुणेनौजसाऽग्निना तेजसा सोमेन राज्ञा विष्णुना दशम्या देवतया प्रसूतः प्रसर्पामि ॥ यजु० १०, ३०

हे राष्ट्र के योग्यतम प्रतिनिधियों ! आज आप सब ने एक मत हो राष्ट्रपति का यह गौरवपूर्ण पद देकर मुझे जो सम्मान प्रदान किया है उसके लिये मैं आपका आभार मानता हूँ ! आज इस सिंहासन पर बैठ कर मैं यह अनुभव कर रहा हूँ कि यह पद कितना गुरुतर है और कितना उत्तरदायित्वपूर्ण है। मैं जितना ही अधिक इस पद के गौरव का ध्यान करता हूँ उतना ही अधिक विनम्रता से मेरा मस्तक झुक जाता है। यह पद तो देवों का पद है। इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण आदि देवों का अंश लेकर राष्ट्रपति का निर्माण होता है* यह स्मृतिकारों का कथन अक्षरशः ठीक है। अतः अपने विषय में भी मैं मानता हूँ कि सच्चे अर्थों में मुझे 'देवों का अंश' बनना चाहिये। इस लिये आज मैं आपके सम्मुख उन सब देवों का स्मरण करना चाहता हू।

सर्वप्रथम मैं 'सविता' देव को स्मरण करता हूँ। 'सविता' प्रसविता है, प्रेरणा का अधिपति है, सबको शुभ प्रेरणा करने वाला है। मैं प्रण लेता हूँ कि मैं भी सविता बनूंगा। देश की प्रजा का कर्तव्य की प्रेरणा करना मैं अपना परम कर्तव्य समझूंगा। यदि कभी मेरे देखने या सुनने में आयेगा कि मेरे देश के कोई ब्राह्मण ब्राह्मणत्व से च्युत हो रहे हैं, कोई क्षत्रिय क्षात्रधर्म से च्युत हो रहे हैं, कोई वैश्य वैश्यत्व से च्युत हो रहे हैं, कोई शूद्र शूद्रत्व से च्युत हो रहे हैं, तो उन्हें कर्तव्य पालन की प्रेरणा पहुँचाना मेरा सबसे पहला कर्तव्य होगा। मैं सविता बन कर राष्ट्र में राज-नियमों को प्रेरित करूंगा, मैं सविता बनकर प्रजा को सदा अच्छे कर्मों के लिये प्रेरित-प्रोत्साहित करूंगा।

* (प्रसवित्रा सवित्रा) प्रेरक सविता से (वाचा सरस्वत्या) वाग्देवी सरस्वती से, (रूपैः त्वष्ट्रा) रूपों के अधिपति त्वष्टा से, (पशुभिः पूष्णा) पशुओं के अधिपति पूषा से, (अस्मे इन्द्रेण) अपने सजातीय इन्द्र से, (ब्रह्मणा बृहस्पतिना) ब्रह्मत्व के अधिपति बृहस्पति से, (ओजसा वरुणेन) ओजस्वी वरुण से, (तेजसा अग्निना) तेजस्वी अग्नि से, (राज्ञा सोमेन) राजा सोम से, और (दशम्या देवतया विष्णुना) दसवें देव विष्णु से (प्रसूतः) प्रेरित होकर (प्रसर्पामि) मैं चलूँगा—शासन-कार्य करूंगा।

* देखो, मनुस्मृति ७ ४–७

मैं "सत्यप्रसव" बनूंगा,[1] सचाई से शासन करूंगा।

सविता के बाद मैं वाग्देवी 'सरस्वती' का स्मरण करता हूँ। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि अपने राज्यकाल में सदा सरस्वती की आराधना करता रहूँगा। अपने देश की भाषा का गौरव बढ़ाने उस भाषा मे सब प्रकार का साहित्य सृजन करने को प्रोत्साहित करूंगा। मेरा प्रयत्न होगा कि मेरे देश की भाषा में ऊंचे से ऊंचा काव्य हो, मेरे देश की भाषा मे ऊंचे से ऊंचा विज्ञान हो, संसार की बड़ी से बड़ी भाषाओं में जो भी उच्च से उच्च साहित्य है उससे मेरे देश की भाषा वञ्चित न हो।

सरस्वती के बाद मैं 'त्वष्टा' को स्मरण करता हूं। त्वष्टा रचना का देव है, रूप प्रदान करने वाला है। मैं भी त्वष्टा बनूंगा, राष्ट्र मे नवीन-नवीन रचनात्मक कार्यों को प्रगति दूंगा। जिन वस्तुओं का मेरे देश में इस समय निर्माण होता है उनके निर्माण को मैं अधिक उन्नत करूंगा और जिन वस्तुओं के लिये मेरे देश को अन्य देशों पर अवलम्बित रहना पड़ता है उनमें से भी जिनका निर्माण मेरे देश में सम्भव है उनके निर्माण को प्रोत्साहन दूंगा। मैं अपने देश के कला कौशल को इतना विकसित करूंगा कि मेरे देश की बनी कलापूर्ण वस्तुओं का प्रयोग करने में अन्य देशों के लोग भी गौरव अनुभव करेंगे।

त्वष्टा के बाद मैं 'पूषा' का स्मरण करता हूँ। 'पूषा'[3] पशु-समृद्धि का देव है। वह हरे भरे खेतों को देने वाला है, अन्न से भूखों का पेट भरने वाला है। वह मार्ग रक्षक है। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं भी 'पूषा' बनूंगा। मैं अपने देश में पशुपालन का अच्छे से अच्छा प्रबन्ध करूंगा, गाय, बैल, हाथी, घोड़े, भेड़, बकरी आदि उपयोगी पशुओं के पालन के नवीन वैज्ञानिक ढंग का देश में प्रचार करूंगा, देश में स्थान-स्थान पर गोशालायें खुलवाकर शुद्ध दूध, मक्खन आदि को प्रत्येक देशवासी के लिये सुलभ कर दूंगा। मैं देश मे कृषि के विकास का भी बीड़ा उठाऊंगा। खाद, जुताई, सिंचाई आदि के नवीन उपयोगी तरीकों का देश में प्रचलन कराऊंगा। कृषि के वैज्ञानिक अध्ययन के लिये कृषि-विद्यालय खुलवाऊंगा। ऐसा यत्न करूंगा कि देश की भूमि सस्य-श्यामला होकर अन्न से भर जाये, एक भी देशवासी भूखा न रहे। मैं पूषा से यह भी शिक्षा लेता हूँ कि यातायात के लिये सड़कों की भी समुचित व्यवस्था कराऊंगा।

पूषा के बाद मैं अपने सजातीय इन्द्र' का स्मरण करता हूं जैसे मै आज राष्ट्रपति बना हूं वैसे ही इन्द्र देवों का राष्ट्रपति है। वह 'विशौजा'[1] है। मैं भी उस इन्द्र की तरह सच्चे अर्थों में 'विशौजा' बनूंगा, प्रजा को ही अपना ओज, अपना बल समझूँगा, उसे अपना वध्य शिकार नहीं समझूँगा। इन्द्र वीरता[2] का भी देव है। उसकी वीरता का वेदों में बहुत वर्णन हुआ है। वह वृत्र, अहि, शम्बर, शुष्ण, नमुचि आदि अनेक असुरों का संहारक तथा आर्यों का रक्षक है। वैसे ही मैं भी वीर बन कर असुरों का संहार करूंगा और आर्य नष्ट कर। रास्ते के शत्रु चोर, डाकू को रास्ते से दूर हटा (१. ४२. ७. ३)।"

---

१. 'सवितासि सत्यप्रसवः' यजु० १० २८

२. 'त्वष्टा रूपाणामधिपतिः' शत.

३. देखो, ऋग्वेद— 'पूषा हमारी गौओं की रक्षा करे, पूषा घोड़ों की रक्षा करे, पूषा हमें अन्न दे (६. ५४. ५)। हे पूषन्! हमें हरे-भरे खेत प्रदान कर (१. ४२. ८)। हे पूषन्! हमारा पेट भर (१. ४२ ६)। हे पूषन्! जो पापी, भेड़िया, दुःख दायी शत्रु रास्ते में आकर हमें सताता है उसे रास्ते से

'पूषा वै पशूनामीष्टे" शत०

१. 'इन्द्रोऽसि विशौजाः' यजु० १०, २८।
लौकिक संस्कृत का 'बिडौजाः'।

२. 'इन्द्रो वीर्येणोदक्रामत्' अथर्व० १६.१६.६।
"सर्वा बलकृतिरिन्द्रस्य" निरुक्त।

प्रजा की रक्षा करूंगा। मैं अपने देश के सब नर नारियों को भी वीर बनाऊंगा और उनके लिये सैनिक शिक्षा का यथोचित प्रबन्ध करूंगा। इन्द्र ऐश्वर्य का अधिपति व ऐश्वर्य प्रदाता भी है।[१] वैसे ही मैं भी ऐश्वर्याधिपति बनूंगा और राष्ट्र को समृद्धि व ऐश्वर्य के शिखर पर पहुंचाने के लिये यत्नवान् रहूंगा।

इन्द्र के बाद मैं उस बृहस्पति' का स्मरण करता हूं जो ब्रह्मत्व का अधिपति है। ब्रह्म का अर्थ है ब्राह्मण-बल, ज्ञान, आस्तिकता, धर्म। तो मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि अपने देश में जहां इन्द्रत्व का, क्षात्रबल का विकास करूंगा वहां साथ ही ब्रह्मबल का भी उत्थान करूंगा। मेरे देश में उच्चकोटि के स्वाध्याय-शील ब्राह्मण पैदा हों, मेरा देश ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में किसी से पिछड़ा न रहे, मेरे देश के लोग सच्चे आस्तिक और धर्म-परायण हों इसके लिये मैं सदा यत्न करता रहूँगा और मैं स्वयं भी राजनीति-विज्ञान का कुशल ज्ञाता, ईश्वर का स्मरण रख कर कार्य करने वाला तथा धर्मनिष्ठ बनूंगा।

बृहस्पति के बाद मैं ओजस्वी 'वरुण' का स्मरण करता हूँ। वरुण[२] पाशी है, उसके पास सैंकड़ों पाश हैं, जिनसे वह अपराध करने वाले को बांधता है। कोई भी असत्य आचरण करने वाला उसके पाश से मुक्त नहीं हो पाता। वरुण के सहस्रों गुप्तचर हैं जो सर्वत्र विचर रहे हैं। कोई कहीं भी जाकर छिप जाये, चाहे द्युलोक के भी परले पार पहुँच जाये, उनकी दृष्टि से नहीं छूट पाता। मैं भी ऐसा ही बनने का यत्न करूँगा। जहां सज्जन निर्भय होकर देश में स्वच्छन्द विचरेंगे वहां अपराधियों को मैं पाश से, हथकड़ी-बेड़ियों से बांधूंगा भी और तब तक वे मुक्त नहीं हो पायेंगे जब तक अपने अपराध का यथोचित दण्ड नहीं भोग लेंगे। मैं देश की एक-एक गतिविधि से परिचित रहूँगा। चारों ओर मेरे गुप्तचर छूटे रहेंगे जो देश के कोने कोने की खबर मुझे पहुँचाते रहेंगे। मैं भी वरुण की तरह प्रजा के सत्यानृत को देखता रहूँगा और सत्य को प्रोत्साहित तथा असत्य को दमन करता रहूंगा।

वरुण के बाद मैं तेजस्वी 'अग्नि' का स्मरण करता हूं। मैं अग्नि के समान स्वयं प्रकाश पूर्ण तथा दूसरों को प्रकाश देकर राह दिखाने वाला बनूँगा। मैं बुझे कोयले की तरह निस्तेज होकर नहीं पड़ा रहूँगा, अपितु अग्नि-ज्वाला की तरह चमकूँगा। जैसे अग्नि की ज्वाला को कोई कितना ही नीचा करना चाहे वह सदा ऊपर को ही उठती है वैसे ही विघ्न, शत्रु या परिस्थितियां मुझे कितना ही नीचे दबाने का यत्न करें मैं ऊपर ही उठूंगा, बल्कि जितने वेग से मुझे नीचे दबाने का यत्न किया जायेगा उससे दूने वेग से मैं ऊपर उठूँगा और अपने राष्ट्र को भी ऊपर उठाऊँगा। अग्नि में जो आहुति डाली जाती है उसे वह अपने पास नहीं रख लेता, किन्तु उसका रूपान्तर करके उसे सार्वजनिक हित के लिये वायुमण्डल में चारों ओर फैला देता है। वैसे ही प्रजा द्वारा जो आहुति मुझ में पड़ेगी जो कर (टैक्स) मुझे प्राप्त होगा उसे मैं सार्वजनिक हित के कार्यों में ही व्यय करता रहूँगा। अग्नि मनुष्यों और देवों के बीच में दूत[२] का कार्य करने वाला है, वह मनुष्यों की प्रार्थना पर उनके पास देवों को बुला कर लाता है और मनुष्यों के दिये हव्य को देवों के पास पहुँचाता है। मैं भी प्रजा और देवों (विद्वानों)[३] के बीच में यह दूत कार्य करने में अपना गौरव मानूंगा। किसी स्थान की प्रजा जिस देव को,

१. इन्दति परमैश्वर्यवान् भवति स इन्द्रः (इदि परमैश्वर्ये)। देखो मघवा, धनदा आदि विशेषण।

२. वरुण के इस स्वरूप के लिये देखो, अथर्व. ४,१६

१. सत्यानृते अवपश्यन् जनानाम् ऋग्०७.४९.३

२. अग्निं दूतं वृणीमहे, ऋग् १. १२. १।
"अग्निरेव देवानां दूत आस" शत.

३. "विद्वांसो हि देवाः" शत.

जिस विद्या के विद्वान् को, जिस विशेषज्ञ को अपने बीच बुलाना चाहेगी उसे उसके पास पहुँचाने का मैं यत्न करूंगा। इस प्रकार कृषि-विशेषज्ञ, चिकित्सा-विशेषज्ञ, ज्योतिर्विद्या-विशेषज्ञ आदि विविध देवों को प्रजा के पास पहुँचाने वाला देवदूत मैं बनूंगा। साथ ही प्रजा की दी हुई आहुति को देवों के पास पहुंचाने रूपी दूसरे दूत-कार्य को भी मैं करूंगा। प्रजा जिस विद्या की उन्नति के लिये जो दान मुझे भेजेगी उसे मैं उस उस विद्या के अनुसन्धान दि कार्य में संलग्न विशेषज्ञ के पास, उस उस विद्या के देव के पास, पहुंचा दूंगा। एवं सच्चे अर्थों में अग्नि बनने का यत्न मैं करता रहूंगा।

अग्नि के बाद मैं राजा 'सोम'१ का स्मरण करता हूं। सोम नक्षत्रराट् चन्द्रमा है। चन्द्रमा की तरह मधुर, सौम्य और आह्लादक मैं बनूंगा। एक ओर जहां मुझ में अग्नि जैसा प्रचण्ड तेज होगा वहां दूसरी ओर चन्द्र जैसा मधुर तेज भी होगा। मैं पूर्णिमा के चन्द्र की तरह षोडश कलाओं से समृद्ध भी बनूंगा। इस आकाशीय सोम के अतिरिक्त एक अन्य सोम पृथ्वी पर भी है, जो ओषधियों का राजा है और जिसका रस रोग तथा निर्बलता को हर कर अमरता देने वाला है। वैसे ही मैं भी मरते हुओं के लिये अमृत-रस बनूंगा, निर्बलों का बल बनूंगा। रोगियों के रोग हरने वाला बनूंगा। अपने राज्य में सोम-विद्या या ओषधि विज्ञान को भी विकसित करूंगा। यह सब सन्देश मैं सोम राजा से ग्रहण करता हूँ।

अन्त में मैं व्यापकता के देव त्रिविक्रम 'विष्णु' का स्मरण करता हू जिस देव ने अपने तीन चरणों से त्रिलोकी को माप लिया है। मैं भी त्रिलोकी में कदम रखूंगा ज्ञान के चरणोंसे त्रिलोकी में व्यापकहो जाऊंगा। मेरे देश के अध्यवसायी ब्राह्मण वैज्ञानिक त्रिलोकी की कोई वस्तु अज्ञात नहीं छोड़ेंगे। यही क्यों,मैं तो यह भी स्वप्न लेता हू कि सचमुच हम त्रिलोकी में अपने कदम रख सकेंगे। मेरे देश के वैज्ञानिक ऐसे वायुयानों का आविष्कार करेंगे जिनसे हम त्रिलोकी की यात्रा कर सकेंगे। इस त्रिलोकी के अतिरिक्त मेरी एक और भी त्रिलोकी है, मेरे देश के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ये तीन लोक हैं वैश्य पृथिवी लोक हैं, क्षत्रिय अन्तरिक्ष लोक हैं, और ब्राह्मण द्युलोक हैं। इस त्रिलोकी में भी अपने प्रभाव, अपने सम्मान, अपने स्नेह भाव से मैं व्याप्त रहूँगा, तीनों के हृदयों में अपना स्थान बनाऊंगा।

आज आप सबके सम्मुख मैं इन प्रतिज्ञाओं को लेता हूँ। दसों देवों से प्रेरणा ग्रहण करता हुआ ही मैं शासन करूंगा। प्रभु मुझे बल दे कि मैं अपनी इन प्रतिज्ञाओं पर सदा स्थिर रहूं।

१. "सोमेन पृथिवी मही। अथो नक्षत्राणां मेषा मुपस्थे सोम आहितः"। ऋग् १०. ८५. २ 'ओषधयः सवदन्ते सोमेन सह राज्ञा' ऋग्० १०. ९७. २२

★

जीवन क्या है ?

श्री चम्पत स्वरूप गुप्त

मनुष्य ने इस समस्या को सुलझाने के लिए बहुत यत्न किये हैं। जितना अधिक इस विषय को समझाने का प्रयत्न किया गया है, उतना ही यह जटिल बन गया है। आज तक भी हम निश्चयात्मक रूप से नहीं जानते कि जीवित और अजीवित वस्तुओं में वास्तविक भेद क्या है। कहा जाता है कि सृष्टि के व्यवस्थित द्रव्य की, जिसमें कि मुख्य रूप से जन्तु और पौदों की गणना होती है, मृत्यु से पूर्व निरन्तर क्रियाशीलता तथा परिवर्तन का नाम जीवन है। किन्तु यह परिभाषा बिल्कुल अपूर्ण है क्यों कि जब तक मृत्यु की परिभाषा न की जाए जब तक जीवन की परिभाषा कुछ भी अर्थ नहीं रखती। मृत्यु की परिभाषा में वही समस्या फिर से लौट कर आएगी। कहना पड़ेगा की जीवन से अतिरिक्त अवस्था मृत्यु है। इस प्रकार जीवन और मृत्यु की परिभाषा एक दूसरे के चारों ओर घूमती रहेगी।

इन सब कठिनाइयों के होते हुए भी जीवन विज्ञान ने जीवित पदार्थों के कुछ विशेष लक्षणों की ओर संकेत किया है जिनसे कि उनको अजीवित पदार्थों से पृथक किया जा सके। वे लक्षण इस प्रकार हैः—

विशेष आकृति तथा आकार—कुछ सीमाओं के भीतर प्रत्येक जीवित प्राणी का अपना निश्चित आकार तथा आकृति होती है। इस आधार पर एक गाय से भैंस को, हाथी से चींटी को, कुत्ते से बिल्ली को तथा नीम के पेड़ से तुलसी के पौदे आदि को सरलता से पृथक समझा जा सकता है। अजीवित पदार्थों में यह विशेष गुण नहीं है। एक पत्थर का टुकड़ा छोटे से कण से लेकर बड़ा चट्टान हो सकता है। इसी प्रकार पानी का आकार तथा आकृति एक छोटी सी बूंद से लेकर नदी, झील और समुद्र के विशाल विस्तार तक जा सकती है।

निश्चित व्यवस्था—जीवित जगत में एक निश्चित और विशेष प्रकार की व्यवस्था है। जिस प्रकार एक दीवार ईंटों से, और जिस प्रकार मधुमक्खी का मधुकोष कोष्ठों से मिल कर बना है उसी प्रकार प्रत्येक प्राणी का शरीर जीवित पदार्थों की विशेष इकाइयों से मिलकर बना है जिनको कोष्ठ कहते हैं बहुत से जन्तुओं, जैसे अमीबा, का शरीर केवल एक ही कोष्ठ का बना है। अन्य जन्तुओं, जैसे मनुष्य और मेंढक आदि के शरीर के निर्माण में अनेक कोष्ठ भाग लेते हैं। एक कोष्ठ के शरीर वाले जन्तुओं को एक कोष्ठीय तथा बहुत से कोष्ठ के शरीर वाले जन्तुओं को बहुकोष्ठीय जन्तु कहते हैं। बहुकोष्ठीय जन्तुओं में कोष्ठों से मिलकर विभिन्न समूह बनते हैं जिनको धातु कहा जाता है। मांसपेशियां तथा अस्थि धातुओं के उदाहरण हैं। अनेक धातुओं से मिलकर अवयव बनते हैं। हृदय, आमाशय, वृक्क, आंख, कान और नाक आदि अवयव हैं। अवयवों से मिलकर संस्थान बनते हैं। अन्नवह, आमाशय तथा आन्त्र आदि से मिलकर पाचन संस्थान और मस्तिष्क, सुषुम्ना तथा अन्य नाड़ियों से मिलकर नाड़ी संस्थान बने हैं। विभिन्न संस्थानों से मिलकर शरीर बनता है। प्रत्येक संस्थान का अपना पृथक कार्य है। अजीवित पदार्थों में इस प्रकार की निश्चित व्यवस्था नहीं है।

व्यक्तित्व—प्रत्येक जीवित प्राणी का अपना एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व है। प्राणी अपने में एक सम्पूर्ण इकाई है जिसके शरीर के टुकड़े कर डालने से उसकी जीवित अवस्था और रूप छिन्न भिन्न होता है। आधी बिल्ली या चौथाई बिल्ली जीवित प्राणी के रूप में कहीं पर भी न मिलेगी। किन्तु एक फिटकरी के टुकड़े को दो, तीन, चार या और कितने ही टुकड़ों में बांट देने के बाद भी प्रत्येक छोटा या बड़ा टुकड़ा फिटकरी ही कहलाएगा और उसमें फिटकरी के सब गुण भी उपस्थित होंगे।

रसायनिक निबंधन—जीवित प्राणियों के

शरीर का रसायनिक निर्माण मुख्य रूप से कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन, और नाइट्रोजन तथा अल्प मात्रा में कैलसियम, फासफोरस, सोडियम पोटेशियम लोहा, तांबा, गन्धक और क्लोरीन आदि तत्वों से मिलकर हुआ है। इन तत्वों के परमाणुओं को विभिन्न संख्याएँ मिलकर जीवित पदार्थ के जटिल और भारी अणु बनाती हैं। इस जीवित पदार्थ को अणुभार कहते हैं। कोष्ठ अणुभार की इकाइयां हैं। अजीवित पदार्थ में भी ऊपर लिखे तत्त्व हो सकते है किन्तु अणुभार अपेक्षाकृत कम होता है और जटिलता की अपेक्षा सरलता अधिक व्याप्त है।

विधायक-विघातक क्रिया—प्रत्येक जीवित प्राणी के शरीर में बहुत सी जीवन क्रियायें निरन्तर चलती रहती है जिनको सामुहिक रूप से विधायक-विघातक क्रिया कहा जाता है। इसमें दो प्रकार की उपक्रियाओं को मुख्य रूप से गणना होती है। एक सात्मीकरण और दूसरी टूटफूट। सात्मीकरण को विधायक क्रिया और टूटफूट को विघातक क्रिया भी कहते हैं। अजीवित पदार्थ अपेक्षाकृत स्थिर है।

विधायक क्रिया-जीवित पदार्थों में विजातीय पोषक द्रव्य को अपने अन्दर ग्रहण करके उसको पचालेने तथा अपने स्वरूप के अनुकूल बना लेने का सामर्थ्य होता है। इसी क्रिया को सात्मीकरण कहते हैं। सात्मीकरण में शक्ति का सचय होता है और संचित शक्ति का प्रयोग जीवन क्रियाओं को चलाने में किया जाता है।

काम करने की सामर्थ्य को शक्ति कहते हैं। पानी को भाप में बदलना एक कार्य है। इस कार्य को करने के लिये ताप रूपी शक्ति की आवश्यकता होती है। यह शक्ति भाप में संचित है क्यों कि शक्ति का कभी नाश नहीं होता, रूप अवश्य बदल सकता है। भाप को ठंडा करके जब जल बन या जाता है तो संचित शक्ति ताप के रूप में फिर से वापिस मिल जाती है। ताप, प्रकाश तथा विद्युत आदि शक्ति के विभिन्न रूप हैं। रसायनिक सयोग के समय जबकि सरल वस्तुओं से मिलकर जटिल वस्तुओं का निर्माण होता है शक्ति की आवश्यकता होती है वह शक्ति जटिल वस्तु मे संचित हो जाती है। उल्टी क्रिया अर्थात् विघटन या टूट फूट के समय यह संचित शक्ति वापिस मिल जाती है जिससे विभिन्न प्रकार के कार्य किए जा सकते हैं।

शक्ति का अन्तिम प्राप्ति साधन सूर्य है। पौदे सूर्य के प्रकाश से शक्ति प्राप्त कर के सरल समास जैसे कि कार्बन डाइऑक्साइड गैस, जल तथा खनिज लवण आदि को मिला कर जटिल समास जैसे कि कार्बोहाइड्रेट स्नेह और प्रोटीन आदि बनाते हैं। यह शक्ति जटिल पदार्थों में संचित रहती है। जन्तु इन शक्ति वाले पदार्थों को पोषक द्रव्य के रूप मे ग्रहण करके तथ पचाकर अपने शरीर की जटिल धातु को बनाते है। इस प्रकार वह शक्ति इस जटिल धातु मे भी संचित रहती है।

विघातक क्रिया-सात्मीकरण द्वारा बने हुए देह धातु का श्वास क्रिया द्वारा विश्लेषण या टूट फूट होता है। श्वास क्रिया जीवन की एक सबसे आवश्यक क्रिया है। कोई भी प्राणी बिना श्वास लिए जीवित नहीं रह सकता। वनस्पतियों मे भी यह क्रिया निरन्तर चलती रहती है। इसमें ऑक्सीजन गैस शरीर के भीतर जाती है और कार्बन डाइऑक्साइड गैस बाहर निकलती है। देह धातु के सात्मीकरण में जो शक्ति संचित होती है वह इस समय ऑक्सीजन द्वारा किए हुए धातु के विश्लेषण मे विसर्जित होता है और इसी शक्ति से प्राणी जीवन के भिन्न भिन्न कार्य करने में समर्थ होता है। इस शक्ति का भिन्न भिन्न कार्यों में प्रयोग होता है। वे कार्य मुख्यतः ये हैं:-सकोचन, रसायनिक क्रिया, क्षरण तथा मलोत्सर्ग और वेग का सवहन। सकोचन वह क्रिया है जिससे कि शरीर की सारी यान्त्रिक गतियां होती हैं। सकोचन में शरीर का कोई भाग बिना आकार परिवर्तन किए हुए अपनी आकृति

में परिवर्तन कर लेता है अर्थात् एक दिशा में पतला और दूसरी दिशा में मोटा हो जाता है। यह क्रिया शरीर की किसी भी मांस पेशी में देखी जाती है। कुहनी मोड़ते समय हम देखते हैं कि द्विशिख नामक मांसपेशी किस प्रकार मोटी हो जाती है। रसायनिक क्रिया को हम भिन्न भिन्न पाचक रसों के कार्य में स्पष्ट देखते हैं। आमाशय में पहुँचने पर भोजन की प्रोटीन आमाशयिक रस द्वारा पेप्टोन नामक पदार्थ में बदल जाती है। विश्लेषण और रसायनिक क्रिया द्वारा शरीर में दो प्रकार के पदार्थ पैदा होते हैं। एक तो वे जो कि शरीर के लिए लाभप्रद होते हैं और दूसरे वे जो कि हानिकारक होते हैं। लाभप्रद पदार्थों के बनने की क्रिया को चरण तथा इसके विरुद्ध क्रिया को मलोत्सर्ग कहते है लाभप्रद पदार्थ जैसे पाचक रस द्वारा शरीर के उन भागों में चले जाते हैं जहां कि उनकी आवश्यकता होती है और मल आदि हानिकारक पदार्थ शरीर से बाहर निकल जाते हैं। श्वास क्रिया में बाहर निकली हुई कार्बोनिक गैस गैस मूत्र पुरीष और स्वेद आदि मल मल अथवा हानिकारक पदार्थ हैं। सम्मिश्रित या जटिल धातु का विश्लेषण द्वारा सरल पदार्थों में टूट कर हानिकारक पदार्थों का का बाहर निकल जाना शरीर की एक विघातक क्रिया कही जाती है। वेग के सवहन में शक्ति की आवश्यकता होती है। यदि शरीर के किसी भाग में एक सुँई चुभा दी जाये तो उसका सन्देश या वेग तुरन्त नाड़ियों द्वारा मस्तिष्क को पहुँचता है और मस्तिष्क से उसके प्रतिकार की आज्ञा फिर त्वचा को जाती है यह सारी क्रिया वेग सवहन कहलाता है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है शक्ति का प्रादुर्भाव भिन्न भिन्न रूपों में हो सकता है। यह शक्ति ताप का रूप धारण कर सकती है जैसा कि मनुष्य शरीर के गरम होने से प्रतीत होता है। जुगनू में यह शक्ति प्रकाश के रूप में प्रकट होती है। वैद्युत इल तथा वैद्युत रे आदि मछलियों में शक्ति का का प्रादुर्भाव विद्युत के रूप में होता है। इन मछलियों में विशेष अंग होते हैं जिन में विद्युत पैदा होती है।

वृद्धि—विघातक क्रिया की अपेक्षा साधारण अवस्था में विधायक क्रिया अधिक मात्रा में चलती रहती है जिसके कारण शारीरिक धातु का निर्माण होता है और उसमें वृद्धि होती है। कहा जा सकता है कि वृद्धि तो जड़ पदार्थों में भी हो सकती है। उदाहरण के लिए एक अति सतृप्त घोल में पड़े हुए स्फटिक में वृद्धि होती रहती है। किन्तु स्फटिक की वृद्धि में केवल बाहर से उसी प्रकार के कण स्फटिक के ऊपर जमा होते जाते है, स्फटिक में स्वयं ऐसी शक्ति नहीं है कि वह बाहर के भिन्न पदार्थों के कणों को ग्रहण करके उनको अपने रूप में परिवर्तित कर सके। इस लिए अजीवित स्फटिक में सात्मीकरण का सर्वथा अभाव है।

गति—प्रत्येक जीवित प्राणी के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने को बाह्य परिस्थितियों के अनुकूल ढाल सके। तभी वह जीवन संघर्ष में सफल हो सकता है। इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक प्राणी में बाह्य परिस्थितियों का अनुभव करने की शक्ति तथा अनुभव करके उसके अनुसार शारीरिक गति करने की शक्ति होनी चाहिए। इस प्रकार की गति क्षुभ्यता कहलाती है। अधिक स्पष्ट रूप से कहें तो किसी क्षोभक या उत्तेजक की उत्तेजना द्वारा शरीर में किसी क्रिया का जारी होना या पहिले से होती हुई क्रिया का रुक जाना ही क्षोभ्यता है। आत्मसात का यह मुख्य गुण है।

क्षोभ्यता के अनेक उदाहरण हम प्रत्यक्ष दिखलाई पड़ते है। शत्रु के सामने आने पर प्राणी लड़ने और रक्षा करने के लिए तैयार हो जाता है। अनुकूल भोजन की गन्ध मात्र से ही मुँह में पानी आने लगता है। छुइमुई या लाजवन्ती के पौदे की पत्तियां छूने से बन्द हो जाती हैं। पृथ्वी की गुरुत्व। कर्षण उत्तेजना के प्रभाव से जड़ें पृथ्वी की ओर और तने ऊपर वायु

की ओर जाते हैं। साधारणतः प्रत्येक प्राणी में स्पर्श, उष्णता, प्रकाश आदि उत्तेजनाओं को अनुभव करने की शक्ति विद्यमान है। उत्तेजना का प्रतिचार विशेषकर छोटे प्राणियों में और वनस्पतियोंमें इतना सूक्ष्म हो सकता है कि उसको हम अपने नेत्रों से न देख सकें। यदि कोई हमारे पैर में सुई भोंकता है तो हम चीखने पुकारने लगते हैं यहां प्रतिचार बिलकुल स्पष्ट है। श्री जगदीश चन्द्र बोस द्वारा प्रस्तावित परीक्षणों से पौदे के शरीर में होते हुए सूक्ष्म प्रतिचारों को भी सिद्ध किया जा सकता है।

आवश्यक नहीं है कि जीवित पदार्थ निरन्तर ही गतिमान रहे। बहुत से जीवित बीज बहुत लम्बे समय तक गति रहित पड़े रह सकते हैं किन्तु शीघ्र या देर से अनुकूल क्षोभक मिलने पर उनमें गति अवश्य आ येगी। प्राणियों के शरीर की गति अधिक से अधिक तेज भी हो सकती है जैसे कि चिड़ियों की उड़ान। और धीमी से धीमी भी हो सकती है जैसे कि मूली के अंकुरित नये पौदे की वृद्धि की।

गति अजीवित पदार्थों में भी होती है। प्रचंड वायु के जोर से धूल के कण उड़ते हैं। गर्म करने पर पानी वाष्प के रूप में उड़ता है। पीतल या अन्य किसी धातु की छड़ी को गर्म करने से वह फैलती है। किन्तु इन अजीवित पदार्थों की गति जीवित प्राणी के शरीर की गति से बहुत भिन्न है जीवित प्राणी में गति उत्पन्न करने को शक्ति शरीर के भीतर है किन्तु अजीवित वस्तुओं में यह शक्ति बाहर से आती है। अजीवित पदार्थ में उत्पन्न हुई गति की मात्रा तथा उस गति को उत्पन्न करने वाले बाह्य कारण की मात्रा में एक निश्चित अनुपात होता है, यथा, जितना ताप व्यय किया जायेगा उसी के अनुपात से पानी की वाष्प बनेगी और उस के अनुपात से धातु की छड़ी फैलेगी। किन्तु जीवित पदार्थों की गति में इस प्रकार का कोई अनुपात नहीं है। उदाहरण के लिये एक मनुष्य को गहरा गड्ढा खोदने के लिये आज्ञा दी जाती है। इसमें उत्तेजक वे शब्द को लहरें है जो आज्ञा के रूप में उसके कान पर पड़ती हैं। इन लहरों की शक्ति उस कार्य से कहीं कम है जो कि उसे गढ्ढा खोदने में करना पड़ता है। उत्तेजक की मात्रा प्रतिचार की मात्रा से अधिक भी हो सकती है।

उद्देश्य पूर्णता

जीवन का एक निश्चित उद्देश्य है। प्रत्येक जीवित प्राणी के सारे शरीर की क्रियाएँ उस उद्देश को पूरा करने में लगी हुई है। जीवन विज्ञान की दृष्टि से जीवन का मुख्य उद्देश अपनी ओर अपनी जाति की संख्या वृद्धि करना है। इस उद्देश को पूर्ति के लिये उसको विशेष रूप से दो मुख्य काय करने पड़ते हैं।

जीवन संघर्ष—भोजन प्राप्त करना, शत्रुओं और प्रतिकूल परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करना आदि सब जीवन संघर्ष की क्रियाएं हैं।

पुनर्जनन—प्रत्येक प्राणी में अपनो सन्तान अर्थात् अपनी ही प्रकार के दूसरे प्राणी पैदा करने की शक्ति होती है। यह शक्ति उसकी जाति संख्या की वृद्धि करने में सहायक है।

पानी में पैदा होने वाली लहरों के विषय में भी कहा जा सकता है कि वे भी अपनी संख्या वृद्धि करती है। सत्य है, किन्तु अपने ही शरीर को वृद्धि अर्थात् नई लहरों की उत्पत्ति नहीं होती। जल या तेल की बूंदें अनुकूल अवस्थाओं में बढ़ती और फिर टूट कर अपनी संख्या वृद्धि करतीं हैं किन्तु यहां पर आन्तरिक स्वभाव का अभाव है।

परिस्थितियों के प्रति अनुकूलता—जीवन का मुख्य उद्देश जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है अपने को परिस्थितियों के अनुकूलता ढालना है और प्रतिकूल परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करना है। अधिक शीत से बचने के लिये मनुष्य ऊनी कपड़े पहनता है, शत्रुओं के पैदा हो जाने पर वह युद्ध के लिये तैयारी करता है और इसी प्रकार बीमारी से बचने के लिये तरह तरह के चिकित्सा सम्बन्धी साधन खोजता है। रेगिस्तानी पौदे अपने शरीर से वाष्पीकरण को कम करने के लिये पत्तियां गिरा देते हैं। ★

हमारे स्वप्न

श्री कुंजबिहारीसिंह एम० ए०

स्वप्नों में कोई तर्क नहीं होता— आप शायद स्वप्नों की असम्बद्ध तथा तर्क रहित व्यवस्थाओं से भय खाते होंगे। कहीं का ईंट, कहीं का रोड़ा लाकर एक ऊटपटांग असंगत चित्र स्वप्न खड़ा कर देता है। चेतन जगत के अनुसार न इसकी कोई व्यवस्था आपको नजर आती है और न कोई मर्यादा। विक्षिप्तावस्था की तरह पचासों प्रकार के विचार तथा प्रतिमाएं हमारे मानसिक स्तर पर आते हैं। क्षण में ही व्यक्ति बदलता है, व्यक्ति दूसरा, आकार दूसरा, एक ही मकान अभी आपका घर है फिर वही जरा में पाठशाला बन जाता है। घर में लड़के कूद रहे हैं, पाठशाला में नाच होने लगता है। बिल्ली के मुंह में सिगरेट है, मनुष्य के पैर आटे के बोरे से बने हैं और हाथ बन्दूक के कुन्दे। बात यह है कि तर्क और नियम हमारी चेतना में होता है। यहां एक व्यवस्था भी होती है। यदि व्यवस्था न हो तो फिर व्यक्तित्व कहां रहा ! इस प्रकार का व्यक्तित्व अचेतन मन में नहीं है। वहां कोई व्यवस्था, तर्क, तथा नियम नहीं। वहां तो ऐसे अनेक संस्कार पड़े हैं जिनके अस्तित्व को आपका आदर्श स्वीकार ही नहीं करेगा। अच्छी, बुरी, निम्नकोटि की, सुसंस्कृत, गम्भीर तथा हल्की सभी प्रकार की भावनाएं हमारे मस्तिष्क में आती हैं और वहां जमती जाती हैं। चूंकि स्वप्न हमारे अचेतन मन को प्रगट करता है इस कारण उसमें चेतन मन की व्यवस्था तथा तर्क का अभाव रहता है।

स्वप्नों में कोई विचित्र बात नहीं है— उनकी विचित्रता, उनकी आलंकारिक भाषा के कारण आती है। आखिर आप स्वयं इन बातों को बिना बोले दूसरों पर किस प्रकार से प्रकट करेंगे—वह कल्पना की उड़ान में था, वह मन मोदक खा रहा था, वह गम्भीर चिन्ता में निमग्न था। यदि आप इसे चित्रित करने का प्रयत्न करें तो देखेंगे कि न समझने वालों के लिए ये ही बातें कितनी विचित्र मालूम पड़ेंगी।

स्वप्नों के कार्य किसी नियम अथवा तर्क से नियंत्रित न होकर यन्त्रवत् सचालित होते हैं। एक प्रकार के दृश्य दूसरे प्रकार के दृश्यों से मिल जाते हैं। एक व्यक्ति की एक वस्तु दूसरे की दूसरी वस्तु से मिला दी जाती है। किसी का चेहरा, किसी की पगड़ी, किसी की नाक, किसी की दाढ़ी; हाथ किसी चीज के, पैर किसी के; पेट सामानों की पेटी से बने तथा पैर लकड़ी के। इस प्रकार का दृश्य देखकर आप स्वभावतः परेशान से हो जायेंगे और फिर इसमें किसी प्रकार का अर्थ निकालना बड़ा कठिन हो जायगा। परन्तु यदि आप स्वप्नों का विश्लेषण सीख जायेंगे तो इन में कोई विचित्रता नहीं मालूम पड़ेगी। हर एक चीज को वैसे ही लीजिए। अपनी जगह पर सब सत्य है और स्वप्न के आवश्यक अंग हैं। जिस व्यक्ति का चेहरा है वह भी जिसकी नाक है वह भी तथा जिसकी दाढ़ी है वह भी स्वप्न के भाग हैं। आलंकारिक भाषा में हम एक भाग से ही पूर्ण का बोध कर लेते हैं। कहते हैं बहुत से मस्तिष्क इकट्ठे थे, अनेक आंखों ने इसे देखा, बहुत से हाथ इसमें लगे थे, परन्तु अर्थ हमारा यहां

पूरे व्यक्तियों से है न कि केवल मस्तिष्क, आंख और हाथ से।

हर भाग को आप अलग कर लीजिए। उनके स्वप्निल सम्बन्ध पृथक कर दीजिए। कोई बिल्ली है उसका पेट छोटी गाड़ी सा है, मुंह में सिगरेट है जिसमें धूआं नहीं आग निकल रही है। इसमें बिल्ली गाड़ी का डिब्बा, सिगरेट, आग चार बातें हैं। चारों अलग २ हैं और चारों स्वप्न के पृथक् पृथक् अंग हैं। केवल बिल्ली ही स्वप्न की चीज नहीं। यह पृथक्करण आपको स्वप्नों के विश्लेषण में सहायक होगा जैसा कि आगे चलकर बताया जायगा।

स्वप्न कई प्रकार के होते हैं—आप याद कीजिए आपने कितने प्रकार के स्वप्न देखे होंगे। शायद वर्गीकरण आप न कर सकें। स्वप्न इतने रूपके, इतने प्रकार से तथा इतने प्रभाव के आते हैं कि उनका सरल वर्गीकरण आप न कर पायें। आप अपने ऊपर इनके प्रभाव का विचार कीजिए। आप देखेंगे कि कुछ तो ऐसे हैं जिनका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता, कुछ ऐसे हैं जो आपको विचलित कर देते हैं। कुछ स्वप्नों में आपने यह देखा होगा कि आप बड़े कष्ट में हैं। आप भागना चाहते हैं परन्तु आपके हाथ पैर जैसे कहीं चिपक से गये हैं। उनमें क्रिया नहीं हो पाती। आप हाथ उठाना चाहते हैं परन्तु कन्धे का मोड़ जैसे हिलता ही नहीं। पैर कूल्हे से गति ही नहीं कर पाते। छाती जकड़ सी जाती है। अथवा ऐसा विदित होता है मानो कोई छाती पर चढ़ बैठा है और आपका सांस लेना कठिन हो जाता है। आप बोलना चाहते हैं परन्तु आवाज बन्द हो जाती है।

दूसरे प्रकार के स्वप्नों में आदमी को यह तो पता नहीं चलता कि हमने क्या देखा। कोई शारीरिक कष्ट भी नहीं मालूम होता जैसा पहले प्रकार के स्वप्नों में होता है परन्तु एक विचित्र प्रकार का भय जागने पर होता है। शरीर कांपता है, घबड़ाहट होती है और बहुत देर तक अस्थिरता सी रहती है।

तीसरे प्रकार के स्वप्न प्रायः आते रहते हैं। आपने उन्हें अवश्य देखा होगा। कभी २ यह होता है कि आप परीक्षा में पहुँचे तब तक पर्चा बंट चुका था, पाठशाला पहुंचे तब तक सारे कार्य आरम्भ हो चुके थे, सभा में गये परन्तु तब तक कार्यवाही आरम्भ हो चुकी थी इन सब स्वप्नों में आपका एक विशेष कार्य था जिसे आप न कर सके। आपको बड़ी ग्लानि होती है। कभी आप यह भी देखते हैं कि आप परीक्षा में बैठे हैं, घंटा बैठे हैं और पर्चा करना भूल गए या एक ही प्रश्न में उलझ गए तब तक समय समाप्त हो गया, अथवा पर्चा छोड़कर बाहर आ गये मालूम हुआ कि प्रश्न सब छूट गये, आप अब अन्दर नहीं जा सकेंगे अथवा आप बाहर आये और फिर अन्दर जाना भूल गए, समय समाप्त होने पर आपको अपनी स्थिति का ज्ञान होता है। प्रायः ऐसे भी स्वप्न होते हैं जिनमें आदमी उड़ता है। वह यह देखता है कि और लोग तो पृथ्वी पर जा रहे हैं। उनकी गति बहुत मंद है। परन्तु वह व्यक्ति जब पैर उठाता है तो बड़ी तीव्रता

से जमीन छोड़ देता है और वेगवान बन जाता है, वह उड़ता है और अन्य लोगों को पार कर जाता है। उसे अनिर्वचनीय आनद होता है। इसी प्रकार के एक स्वप्न में मनुष्य पहाड़ की चोटी पर पहुंच जाता है। फिर वहां से वह नीचे देखता है। सब के छोटे २ आकार तथा सबकी निम्नदशा को देखता है। चारों ओर के दृश्य उसकी दृष्टि में है। वह सबसे ऊँचा है, वह सबको देखता है। इस प्रकार उसे आनंद की अनुभूतियां होती हैं।

ऐसे विचित्र स्वप्न हमारे मानसिक जगत की अनेक प्रच्छन्न बातें बताते हैं—आप अपने पहले प्रकार के स्वप्न लें जिसमें आपके हाथ पैर, सीना जकड़े से मालूम पड़ते हैं। प्राय: ऐसे स्वप्न अर्ध चेतन अवस्था में आते हैं गम्भीर निद्रा में नहीं। इनमें आप की विभाजित भावनाएं काम करती हैं। कोई पहले के ऐसे विचार, अथवा भावनायें जिनको आपने दबा दिया था और चेतना में आने नहीं दिया था क्यों कि वे आपके आदर्शों के प्रतिकूल बैठती थी वे चेतना जगत में आने का प्रयत्न करती है। यह आपको पहले ही मालूम है कि कोई विचार अथवा भावना के संस्कार मरते नहीं, थोड़ी देर के लिए दबा भले ही दिए जाए और प्रकाश में आने से रह जाएं, परन्तु उनका नाश नहीं होता और इनमें शक्ति भी बड़ी प्रबल होती है। यदा कदा अवसर पाने पर ये बाहर आना चाहते हैं। निद्रावस्था में इन्हें अवसर मिलता है और पूरे वेग से ये बाहर आना चाहते हैं परन्तु प्रतिरोधक सजग हो उठता है और चेतना स्तर के ठीक नीचे एक भयंकर द्वन्द्व आरम्भ हो जाता है। परिणाम यह होता है कि गम्भीर अन्त:क्षोभ प्रगट होने लगते हैं। यहां भी आपके विचार और प्रेरणाए भेष बदल कर आती हैं। वैसे ही आपकी रक्षात्मक प्रवृत्ति काम करती है परन्तु चूंकि सारी क्रिया मानसिक है इस द्वन्द्व में आप स्तब्ध से हो जाते हैं और कुछ कर नहीं पाते।

दूसरे प्रकार के स्वप्नों में हमारी गति-विधि अवरुद्ध नहीं होती। वहां हम एक अस्पष्ट तथा अवर्णनीय भय का अनुभव करते हैं। उनमें कुछ अवरुद्ध प्रेरणाएँ तथा स्मृतियां इतनी स्पष्ट होने लगती है कि चेतना में उनके अस्तित्व तथा क्रियाकलाप के बोध होने का भय हो जाता है। ऐसी दशा में अन्त:करण का आचारिक तथा नैतिक विरोध हमारे आवेगात्मक अनुभव का कारण बनता है। ऐसी स्थिति का भय एक "अभिनयात्मक घृणा अथवा निवृत्ति" ही है। ऐसे स्वप्नों में आपको इस बात का ज्ञान नहीं हो पाता कि आपत्ति क्या थी और कैसे उसने आपको प्रभावित किया। आप केवल उद्वेग से ही पीड़ित होते हैं।

तीसरे प्रकार के स्वप्नों का अनुभव भी हम सबको है। पहले स्वप्नों में हमारे अचेतन मन के वे संस्कार कारण बने थे जो हमारे सांस्कृतिक तथा नैतिक जीवन पर आक्रमण करने वाले थे तथा जिनको चेतन मन से हम स्वीकार करना नहीं चाहते थे परन्तु तीसरे प्रकार से स्वप्नों में ऐसी बात नहीं है। इनमें दबी अभिलाषायें आप के आदर्शों के प्रतिकूल

नहीं परन्तु वे आपको इतना आगे ले जाना चाहती थीं कि आप इनको कार्य रूप में परिणत न कर सके और इस कारण उन्हें चेतन मन से आपने हटा दिया। ये स्वप्न आपके जीवन की कुछ महत्वाकांक्षाओं को प्रगट करते हैं। ये आकांक्षाएं आपको उतना दूर ले जाना चाहती थीं जितना कि आपके सीमित साधनों से सम्भव नहीं था। इस कारण तथ्यों की कठोर सीमाएं उनको केवल स्वप्न के रूप में ही स्वीकार कर सकीं और अपने अन्दर क्रियात्मक रूप से नहीं आने दिया। ऐसी अनेक अपूर्ण मनोकांक्षाओं से हम सभी परिचित हैं। हम समाज में अपने साथियों से बहुत बातों में आगे बढ़ना चाहते हैं परन्तु या तो हमारे सामने विघ्न बड़े महान् रूप में उपस्थित रहते हैं अथवा हमारी शक्ति उतनी सहायक नहीं बनती इन कारणों से उन इच्छाओं को हमें दबाना पड़ता है। वे अवरुद्ध इच्छाएं स्वप्न में निकला करती हैं।

स्वप्नों का विश्लेषण आपको नवजीवन देगा—इनसे डरिए नहीं वरन् इनका स्वागत कीजिए। ये आपके मित्र हैं जो आपके दुश्मन का भेद खोलते हैं। यदि आपने इनकी ओर ध्यान न दिया तो आपकी शक्तियां यों ही विनष्ट होती रहेंगी। इनको समझ कर आप नवजीवन प्राप्त कर सकोगे। इनके विश्लेषण से आपका इन शक्तियों से पिण्ड छूट जायगा जो आपको विनाश की ओर ले जा रही है। यह विदित है कि पागलखानों में भेजे गए लोगों में ८० प्रतिशत ऐसे हैं जिनके अचेतन मन की प्रवृत्तियां इतना कड़ा विद्रोह कर रही हैं कि प्रतिरोधक उनके सामने अशक्त हो जाता है। माना कि आप की वह दशा नहीं है, आप अभी स्वाभाविकता की वह सीमा नहीं पार कर पाए हैं कि समाज आपके कारण किसी भय की अनुभूति करे परन्तु इतना तो है ही कि आप अपनी शक्तियों से बहुत कुछ युद्ध कर रहे हैं। यदि ये विद्रोही शक्तियां आप को आक्रान्त न करें और आपका साथ दे दें तो आप की शक्ति कई सौ गुना बढ़ सकती है। जितना काम आप इतनी शक्ति व्यय करके करते हैं उससे कई गुना काम आप उतनी ही शक्ति से करलेंगे फिर आप की शक्ति की वृद्धि भी अधिक हो जायगी। निस्सन्देह यह आप के आत्मविश्वास और सफलता का मार्ग होगा। आप की वे परेशानियां जो आपके व्यक्तित्व को छिन्न भिन्न कर रही थीं वे द्वार जो आपके जीवन विकास में बाधक हो रहे थे इनके दूर हो जाने से आप को सुख और शान्ति प्राप्त हो सकेगी।

★

प्राचीन भारत में उद्यान कला

श्री सांफीराम वर्मा[1]

उद्यान-कला (हॉर्टिकल्चर) का सम्बन्ध फल, फूल, सब्जियों एवं अन्य चाय आदि विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों की बागवानी से है। इसका इतिहास बहुत प्राचीन है और प्रारम्भ से अब तक इसे हम निम्नलिखित पांच कालों में बांट सकते हैं—पूर्व वैदिक-काल २५०० ई० पू० से पहले, उत्तर संहिता (या वैदिक) काल २५०० ई० पू०–४६७ ई० पू०, लौकिक-संस्कृत-काल ४६७ ई० पू०–१३०० ई० प०, मुस्लिम-शासन-काल १३०० ई० प०–१७०० ई० प०, ब्रिटिश-शासन-काल १७०० ई० प०–१९४७ ई० प०, यहां हम केवल पहले दो कालों के विषय में कुछ चर्चा करेंगे।

पूर्व वैदिक-काल

हमारे भारतीय विश्वास के अनुसार वेदों का ज्ञान सृष्टि के आदि में दिया गया था। बहुत समय तक ये श्रुति के रूप में रहे। वर्तमान ऐतिहासिकों ने संहिताओं के रूप में इनके लिपिबद्ध होने का समय कम से कम २५०० ई० पू० माना है। इससे पहले के समय को हम 'पूर्व वैदिक काल' कह सकते हैं।

पूर्व वैदिक-काल के मोहेञ्जोदड़ो और हड़प्पा नामक प्राचीन नगरों (४००० ई० पू०) की खुदाई में उद्यान-कला के इतिहास से सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण संकेत मिले हैं। पक्की ईंटों के बने हुए अन्न के बड़े २ गोदामों-गेहूँ, जौ, चावल, तिल आदि अनाजों, एवं फल, फूल व सब्जियों के अच्छे प्रमाण वहां उपलब्ध हुए हैं। बैल, भैंस, भेड़, हाथी, शूकर, घोड़े, गर्दभ और ऊंट आदि—वहां इन पशुओं की हड्डियां इस बात की साक्षी हैं कि सिन्धवासी इन पशुओं को पालते थे और कृषि योग्य पशुओं की सहायता से उपर्युक्त खाद्य पदार्थों को वे कृषि किया करते थे। कपास की कृषि और उससे बने हुए कपड़ों के भी उपयोग के प्रमाण वहां मिलते हैं। ऐसा विश्वास है कि इतिहास में सिन्धवासियों की यह सभ्यता सबसे प्राचीन व सबसे उन्नतिशील सभ्यता है।

हमारा इतिहास का ज्ञान इससे पीछे और बहुत पीछे का है। परन्तु ४००० ई० पू० इस सभ्यता ने जीवन के सभी क्षेत्रों में जब इतना सर्वतोमुखी विकास किया था तो क्या यह विकास अचानक एकदम ही हो गया होगा ? हमारा आज का विकास सदियों के प्रयत्न के बाद भी इससे पीछे रहता है तो हमें मानना पड़ेगा कि उस सर्वोत्कृष्ट और चहुंमुखी सभ्यता की नींव उससे भी हजारों वर्ष पहले होनी चाहिए। और इस प्रकार हमारे उद्यान-कला का इतिहास सुदूर अतीत से प्रारम्भ होता है।

उत्तर वैदिक काल

२५०० ई० पू० के बाद से 'उत्तर वैदिक-युग' माना जाता है। वैदिक संहिताओं के वर्णनों से कहा जा सकता है कि भारत का यह युग न केवल आध्यात्मिक परन्तु विज्ञान की दृष्टि से भी अत्यन्त उज्ज्वल समय रहा

[1] अमेरिका के ऐरिजोना-विश्वविद्यालय से कृषि शास्त्र के विशेषज्ञ, देप्यू से हॉर्टिकल्चर के डाइरेक्टर के पद से अवसर-प्राप्त।

है। कृषि-विद्या या उद्यान-कला का प्रारम्भ तो पहले ही हो चुका था, परन्तु इस युग में इस कला की बहुत उन्नति हुई। इस युग का सर्वोत्तम आविष्कार लोहे की प्राप्ति है। इस से भारतवर्ष में कृषि एवं दूसरों शिल्पों में क्रांति उत्पन्न हो गई। संहिताओं का संग्रह तो इस युग में हुआ है, परन्तु इनमें विषय सुदूर भूत का भी है। इसलिए इनके वर्णन पूर्व वैदिक काल से भी सम्बन्धित हो सकते हैं। लोहे की करसी, कुदाल और उनसे जमीन को खोद कर (अन्न आदि की आशा से) बल की प्रार्थना आदि का वर्णन अनेक मंत्रों में मिलता है। एक मंत्र है—

'अगस्त्यः खनमानः खनित्रैः प्रजामपत्यं बलमिच्छमान उभौ वर्णावृषिरुग्रः'

ऋग्–१।१७६।६

यहां अगस्त्य मुनि ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वे उसको, उसकी संतान तथा उसके देश की प्रजाओं को इतना बाहुबल प्रदान करें कि जिससे वे सब कुदाल या फावड़े आदि से जमीन को खोद कर उसे भलीभांति बोने लायक बना सकें।

इस हस्त-कुदाल के पश्चात् धीमे २ लकड़ी के हल का आविष्कार हुआ जिसमें लोहे का फाला लगाया गया था। इसके प्रयोग का महत्व बताते हुए वेद ने राजा से रंक तक सबको इस प्रकार उपदेश किया है—

'युनक्त सीरा वियुगा तनुध्वं

कृते योना वपतेह बीजम्। ऋग्०१०।१०१।३

और—

'शुनं न फाला विकृषन्तु भूमिम्'

ऋग्–४।५७।८

अर्थात्—अपने २ हलों को जुओं में जोतो और लोहे का फाला जमीन में अच्छी तरह हल चलाये (खुदाई करे) इस प्रकार हल की (गहरी २ लकीरें (योनि=सीता=फरा) बन जाने के बाद उसमें बीज बोओ। और देखिये—

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः।' ऋग्० १०-३४-१३॥

अर्थात् जूआ मत खेलो, केवल कृषि कर्म करो, तो धनवान्, प्रभुत्व शाली बनोगे, तथा प्रसिद्धि प्राप्त करोगे। कृषि-कर्म के लिए राजाओं महाराजाओं को भी उपदेश किया गया है—

'भगो नो राजा नि कृषिं तनोतु'॥

अथर्व० ३-१२-१४॥

अर्थात् महाराज भी अपनी कृषि स्वयं आप करे। इस समय हल-विद्या की इतनी उन्नति की गई कि दो से लेकर बारह बैलों तक एक साथ जोड़ कर बड़े २ गहरे हल चलाए गए। इसका प्रमाण अथर्व–६-६१-१ में पाया जाता है। जिसमें राजाओं महाराजाओं ने कृषि विद्या को उन्नति देने के लिए अपनी कन्याए तक प्रदान कर दी हैं। श्री भागवत पुराण (दशम स्कन्ध-उत्तरार्ध-४८ वां अध्याय) में राजा नग्नजित् ने अपनी कन्या सत्या को स्वयंवर में उस वीर पुरुष के लिये समर्पित किया था जो कि सात अक्खड़ बैलों को वश में करके नाथ दे—

सप्तैते गोवृषा वीरदुर्दान्ता दुःखमहाः।

एतै भंग्नाः सुबहवो भिन्नगात्रा नृपात्मजाः॥ ४३॥

अर्थात् इन वशीभूत न होने वाले सात बैलों ने बड़े २ राजकुमारों को परास्त कर दिया है और उनके शरीरों को कुचल दिया है। इस पर राजा नग्नजित्, कृष्ण से इस प्रकार कहते हैं—

'यदि ते निगृहीताः स्युस्त्वयैव यदुनन्दन।
वरो भवानभिमतो दुहितुर्मे श्रियःपते ॥४४॥

अर्थात् हे श्री कृष्ण ! यदि इन सातों बैलों को तू वश में करके नाथ देगा तो तू मेरी कन्या (सत्या) का मन-भाता वर बनेगा।

प्राचीन और आधुनिक जीव व वनस्पति विज्ञान की एक झलक

कौटिल्य अर्थशास्त्र में मनुस्मृति का एक श्लोक है—

दण्डेनोपनतं शत्रुमनुगृह्णाति यो नरः।
स मृत्युमुपगृह्णाति गर्भमश्वतरी यथा ॥'
—मनुस्मृति।

अर्थात् जो विजयी नृप अपने पराजित शत्रु को स्वतंत्रता देकर छोड़ देता है, वह अपनी मृत्यु को गर्भ चाहने वाली खच्चरी की तरह स्वयं मोल लेता है।

यह ज्ञात रहे कि यद्यपि कृषि विज्ञान में आधुनिक समय में अत्यन्त उन्नति की गयी है, परन्तु अश्वतरी के बारे में हमारा जो ज्ञान मनु जी के समय में था, वह अब भी वैसा ही है। न केवल अश्वतरी अपनी माता घोड़ी और अपने पिता-गर्दभ का वर्ण-संकर ही है, पर (खच्चरी) स्वयं संतान उत्पन्न करने में असमर्थ है, और यदि उसमें गर्भ स्थित हो जाय तो शिशु को माता (अश्वतरी) का पेट फाड़ कर ही निकाला जा सकता है, इत्यादि इसमें वर्णित प्रामाणिक तथ्य साधारणतः अगम्य होते हैं। इसलिए मानना चाहिये कि प्राचीन काल में वैज्ञानिक-प्रयोगशालाएं अवश्य होती होंगी जिनमें परीक्षणों से इस प्रकार की बातें जानी जाती थीं।

इस उपर्युक्त विषय पर प्रो० गिरिजाप्रसाद मजूमदार ने, जो पत्र वैदिक आर्यों की कृषि पर देहली यूनिवर्सिटी हाल में नवम्बर १६५० में पढ़ा था, वह पत्र संक्षेप में इस प्रकार है—

"वैदिक आर्यों में औषध-विज्ञान (आयुर्वेद) के ज्ञाता वैद्य भी हुआ करते थे। इस समय पौदों की सफलतापूर्वक वंश-वृद्धि के लिए वनस्पति-विज्ञान और पौदों की प्रारम्भिक दशा से सम्बन्धित शरीर-क्रिया-विज्ञान इन दोनों का खूब उपयोग होता था। और जीवन के प्रारम्भिक विकास के सम्बन्ध में उनके जो विचार थे, उस सम्बन्ध में हम अब भी उनसे पीछे हैं।'

संसार में जीव व वनस्पतियों की उत्पत्ति पर जो विचार आर्य लोग छोड़ गये हैं, उनका कुछ वर्णन करना आधुनिक विज्ञान से तुलना करने के लिए यहां अनपयुक्त न होगा। तैत्तिरीय उपनिषद् में इस प्रकार लिखा है—

'तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः। ओषधिभ्योऽन्नम्। अन्नात् पुरुषः। स वा

एष पुरुषो ऽन्न रसमयः। ... ...'
तैत्तिरीय, ब्रह्मानन्द वल्ली। १।

अर्थात् पहले केवल आत्मा था, आत्मा के बाद आकाश उत्पन्न हुआ। आकाश के बाद अग्नि, अग्नि के बाद जल, जल के बाद पृथ्वी का कठोर धरातल बना, जिस पर वनस्पतियां पैदा हुईं। वनस्पतियों से भोजन मिला। भोजन से लिंग-जातियां (पुल्लिंग व स्त्रीलिंग प्राणी) और इन प्राणियों में अन्त मे मनुष्य उत्पन्न हुआ।

बृहत् विष्णु पुराण में भिन्न २ योनियों की उत्पत्ति को पौदों से इस प्रकार आरम्भ किया गया है—

'स्थावरं विंशतेर्लक्षं, जलजं नवलक्षकम्।
कूर्माश्च नव लक्षं च दश लक्ष च पक्षिणः।
त्रिंशल्लक्षं पशूनां च चतुर्लक्षं च वानराः।
ततो मनुष्यतां प्राप्य ततःकर्माणि साधयेत्॥

पौधे जीवित माने जाकर स्थावर (चलने में असमर्थ) नाम से पुकारे गए, जो कि संख्या में बीस लाख थे। तत्पश्चात् क्रमशः नौ लाख जलचर माने गए, नौ लाख कूर्म आदि इस प्रकार के प्राणि जो पानी और हवा दोनों ले सकते हैं इनमें (मेंढक जाति के प्राणि भी सम्मिलित हैं) दस लाख पक्षी, तीस लाख पशु, चार लाख वानर और अन्त में मनुष्य जाति उत्पन्न हुई। इस प्रकार के वर्णनों से हमारे पूर्वजों का ज्ञान कितना व्यापक था, यह स्पष्ट मालूम होता है।

प्रोफेसर मजूमदार एक प्रश्नोत्तर को—जो कि महात्मा बुद्ध ने पृथ्वी की उत्पत्ति के बारे मे दिया था—निम्न प्रकार लिखते हैं—

"इसप्रकार सूर्य चांद, तारे और दूसरे ग्रह एक बार फिर उत्पन्न हो गये और प्राकृतिक ऋतुएं स्वयमेव बन गईं। इसी समय में पृथ्वी का अग्नि-रूप से शीत रूप मे होना आरम्भ हो गया। (अर्थात् पृथ्वी अत्यन्त गरम दशा से ठण्डी होने लगी)। जब यह तरल पृथ्वी क्रमशः ठण्डी व सख्त हुई तो इस पर वनस्पतियां स्वयं ही पैदा हो उठीं"

इस उपर्युक्त विचारधारा को सन्मुख रख कर योरोपियन वैज्ञानिकों ने अपनी पुस्तके लिखी। डारविन आदि की फिलास्फी—जिस पर कितनी ही पुस्तके लिखी जा चुकी हैं— की आधार-शिला भारतीय आर्य लोगों की विचार धारा है। परन्तु जिस प्रकार योरोपियन लोगों ने इस विचारधारा के अनुसार अपने शब्दों मे इतना विस्तृत साहित्य पैदा किया है उसी तरह भारतीय पूर्वजों ने भी अवश्य किया होगा। परन्तु उनका लिखा हुआ साहित्य अभी तक लुप्त एवं गुप्त है।[१]

---

१. भारत के प्राचीन वाङ्मय के अध्ययन में मुझे गुरुकुल विश्वविद्यालय के उपाध्यायों से विशेष सहायता मिली है। स्वच्छ तथा शुद्ध प्रेस कापी तय्यार करने मे श्री सत्यव्रत गुप्त वेदालंकार ने विशेष योग दिया है। इन सब के प्रति आभार प्रकट करता हूं।

★

भारतीय संस्कृति के आधारभूत दो देव—अग्नि और इन्द्र

श्री भगवद्दत्त वेदालङ्कार

भारतीय संस्कृति के आधारभूत दो देव हैं एक अग्नि और दूसरा इन्द्र। सबसे अधिक इन्हीं दो देवों के वेदमन्त्र हमें वेदों में मिलते हैं। इसीलिये हम यह कह सकते हैं कि इन्हीं दो देवों के स्वरूप निर्धारण से हम वेद रूपी समुद्र के मन्थन विलोडन व गावहन आदि में पूर्ण रूप से समर्थ हो सकते हैं। इससे पूर्व के लेख में हमने अग्नि के स्वरूप पर कुछ विचार किया था। अब हम इस लेख में इन्द्र के स्वरूप पर कुछ विचार करते हैं और अग्नि से इन्द्र का क्या भेद है यह भी देखने का प्रयत्न करते हैं।

अग्नि और इन्द्र ये दोनों भगवान के नाम हैं इस में किसी को भी लेशमात्र सन्देह नहीं है। परन्तु भगवान के इन नामों में परस्पर क्या भेद है। सबसे पूर्व यही एक विचारणीय विषय है। यहां यह शंका हो सकती है कि अग्नि और इन्द्र के स्वरूपों में भेद स्पष्ट ही है, फिर इसकी क्या आवश्यकता? इस पर हमारा विचार यह है कि यह स्वरूप भेद इतना स्पष्ट नहीं है जितना कि समझा जाता है। इसमें निम्न हेतु हैं—

१ अग्नि और इन्द्र इन दोनों की उत्पत्ति परमपुरुष के एक ही अवयव से है, और वह अवयव मुख है।

'मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत'

ऋ१०।९० ३

२ ऋग्वेद के २य मण्डल के प्रथम सूक्त में अग्नि की महिमा का वर्णन करते हुए उसे ब्रह्मा, विष्णु रुद्र, इन्द्र, मित्र, वरुण इत्यादि देवरूपों में परिणत होने वाला बताया गया है।

वेद व शास्त्रों की ये अनेकों नाक्तिया यह स्पष्ट निर्देश कर रही हैं कि इन सब देवों के वास्तविक स्वरूप का दिग्दर्शन करते हुए इनके पारस्परिक समन्वय व विभेद पर भी विचार करना आवश्यक है। अब प्रश्न यह है कि अग्नि और इन्द्र के स्वरूपभेद का निर्णय कैसे करें? इसके कई साधन हो सकते हैं, उनमें एक साधन यह भी है कि इन दोनों देवों के विशेषणों व कार्यों पर विचार विवेचन किया जाये। प्रायः सभी विद्वान् इसी साधन का अवलम्बन किया करते हैं। परन्तु हम यहा इस साधन को प्रमुख रूप से न लेकर एक अन्य ही साधन द्वारा अग्नि और इन्द्र के भेद को स्पष्ट करने का प्रयत्न करते हैं। वह साधन है तीन सवनों का। अग्नि और इन्द्र के भेद ज्ञान में ये तीन सवन महान् सहायक हैं। वे निम्न प्रकार हैं—

१ प्रातः सवन, २ माध्यन्दिन सवन, ३ तृतीय सवन। आधुनिक भाषा में इन सवनों की हम इस प्रकार व्याख्या कर सकते हैं।

१ कार्य के प्रारम्भ से लेकर समाप्ति पर्यन्त किये गये परिश्रम के ये तीन विभाग हैं।

२ किसी वस्तु के निर्माण के ये तीन क्रम हैं।

३ तीनों लोक इन सवनों में विभक्त हैं।

४ शरीर के तीन विभाग ,, ।

५ वर्ण और आश्रम ,, ।

६ त्रयी विद्या ,, ।

इसी प्रकार और भी कई व्याख्याएं इन सवनों की हो सकती हैं। परन्तु उदाहरण के रूप में हमने कुछ का यहां दिग्दर्शन कराया। इसमें सबसे प्रथम प्रातः सवन है। इसका मुख्य सम्बन्ध अग्नि से है। दूसरा माध्यन्दिन सवन है जिसका इन्द्र से सम्बन्ध है। तीसरा तृतीयसवन है जिसका सम्बन्ध अन्य सब देवों से है। हमें यहां यह भी स्मरण रखना चाहिये कि इन सवनों का अन्य देवों से भी सम्बन्ध है। परन्तु हमने विस्तार से इन सवनों पर अन्यत्र ही स्वतन्त्र रूप से विचार करेंगे। कहने का भाव यह है कि इन तीन सवनों का प्रत्येक देवता के स्वरूप निर्णय में बड़ा हाथ है। विशेषकर अग्नि और इन्द्र के स्वरूपनिर्णय में तो इन पर विचार होना ही चाहिये यहां इन देवों पर इन सवनों के आधार पर विस्तार से विचार तो हो नहीं

सकता पर संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि अग्नि का क्षण कार्य के प्रारम्भ में है। निर्माण की शुरूआत तथा यात्रा की प्रथम मन्जिल में है। इसलिये अग्नि का मुख्य काम है पथप्रदर्शन करना, नेतृत्व करना, सन्देशहर व दूत बन कर जाना, रास्ता बनाना, वाहन बनना तथा मार्ग में आये विघ्न बाधाओं को सहसपुत्र बनकर दूर करते जाना। इसी प्रकार प्रारम्भ में जो भी गुण होने चाहियें वे सब इस अग्रणी अग्नि में हैं। जब किसी नवीन कारखाने की स्थापना हो वस्तु का निर्माण शुरु होता है तो प्रारम्भ में वह निर्माण बहुत मन्दगति से होता है। वस्तु में भी कोई सौन्दर्य नहीं होता। और बीच बीच में कई प्रकार की बाधाएं भी आ उपस्थित होती हैं। परन्तु मनुष्य धैर्य से किये जाता है। प्रश्न हो सकता है कि यह किसके प्रभाव से? उत्तर में हम यह कह सकते हैं कि यह अग्नि का प्रभाव है। यह अग्नि का क्षेत्र है कि मनुष्य को धैर्य धारण करा आगे बढ़ाये चलना। परन्तु जब कारखाना उस अवस्था में पहुँच जाता है कि वस्तु निर्माण पूर्ण प्रबल वेग से होरहा होता है। वस्तु में भी पूर्ण सौन्दर्य पैदा हो जाता है, और किसी भी प्रकार की बाधाएं सामने नहीं आती, अगर आती भी हैं तो आसानी से उन पर विजय प्राप्त हो जाती है। यह इन्द्र का क्षेत्र है। सामूहिक रूप से स्थूल के निर्माण से लेकर सूक्ष्म से सूक्ष्म वस्तु के निर्माण में यही अग्नि और इन्द्र के क्षेत्र आते हैं। इस प्रकार से हम यह कह सकते हैं कि अग्नि पूर्व रूप है तो इन्द्र उसका पूर्ण वृद्धिगत उत्तर रूप है। अग्नि उत्तेजित करती है तो इन्द्र आदेश देता है। शत्रु से युद्ध के लिये अग्नि चिताती है उत्तेजित करती है, और हारे हुओं में फिर साहस भरती है, तो इन्द्र सीधा वज्र से प्रहार कर शत्रुओं का समूलोच्छेद कर देता है। इसी प्रकार हमें अग्नि और इन्द्र के स्वरूप भेद के निर्णय में उपर्युक्त बात का अवश्य ख्याल रखना चाहिये। इसी दृष्टि से शास्त्रों में वाक् को अग्नि भी कहा है और इन्द्र भी कहा है (श. प. ८।७।२।६, ३।२।२।१३)। परन्तु इन में भेद यह है कि वाक् अग्नि प्रातः सवन से सम्बन्ध रखती है और इन्द्रवाक् माध्यन्दिन सवन से। अग्नि के प्रति दाश्वन् का समर्पण उस पिता के प्रति पुत्र का समर्पण है, जिस पुत्र ने पिता को न भी पूर्ण समर्पण किया हो, बीच बीच में गुस्ताखी भी कर देता हो तो भी अग्नि दयालु हृदय होकर समय समय पर प्रेरित ही करती है। इसी कारण शास्त्रों में अग्नि को सब देवों में कोमल हृदय वाला बताया है (अग्निर्वै देवाना मृदुहृदयतमः। श. प. १।६।२।१०)। परन्तु इन्द्र वह क्षत्रिय पिता है और साथ ही राजा भी है, जिसके पास सीधा नहीं पहुँच जा सकता। अग्नि के द्वारा ही जिसके पास जाया जा सकता है। इसलिये इन्द्र के समक्ष प्रमाद व सौदेबाजी न चलेगी। कुछ भी बचाकर न रखा जा सकेगा। पूर्ण समर्पण की आग में इतना परितप्त होना पड़ेगा कि जिसके आगे तपने को और कुछ न बचे तभी तो उसकी अनन्त विभूतियां व रक्षाएं मिल सकेंगी। ★

परिभाषिक शब्दों की समस्या।

[पृष्ठ २१४ का शेष अंश]

को हमने देखा है। उसके सम्पादक महा पण्डित श्री राहुल सांकृत्यायन हैं। उस कोष के दो उदाहरण हम लेते हैं। अंग्रेजी के टेलीफोन का अनुवाद उस में तैलीफोन और रेडियो का अनुवाद रदियो किया गया है। राहुल जी की इन अनुवादों के पीछे भावना यह है कि फ्रांस में इन शब्दों का उच्चारण इसी प्रकार किया जाता है, जो अंग्रेजी उच्चारणों की अपेक्षा अधिक कोमल है। दूसरे शब्दों में वे इन शब्दों का न केवल कोई भारतीय अनुवाद नहीं करना चाहते बल्कि भारतीय उच्चारण भी उन्हें सहन नहीं। फ्रांस में तैलीफ़ोन और रदियो भले ही कोमल और भले उच्चारण हों पर वे हिन्दी अनुवाद निश्चय नहीं हैं। *

राष्ट्र भाषा और परिभाषिक शब्दों की समस्या

श्री सत्यपाल विद्यालंकार

हिन्दी के स्वरूप को लेकर कुछ वर्षों से अनेक प्रकार के वाद चल रहे हैं। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद ये वाद और भी उग्र हो गये हैं। गाड़ी में घुस जाने के बाद अपनी अपनी सीट पर अधिकार जमा लेने की हड़बड़ाहट मुसाफिरों में दिखाई देती है, वैसी ही हड़बड़ाहट भाषा के पण्डितों में आ गई है। उनकी धारणा यह हो गई है कि कानून अथवा जनमत के ओर से जो नियम इस संक्रान्ति काल में कर लिये जाएंगे, वे ही भविष्य के लिये लीक बन जाएंगे। और उनकी यह धारणा एकदम निर्मूल हो, ऐसी बात नहीं। जन साधारण की रुचि बारबार के परिवर्तनों का स्वागत नहीं करती, और न सक्रान्ति काल का उत्साह ही अमर होता है। इन्डोनेशिया के कर्णधारों ने अपनी चेतना के संक्रान्ति काल में एक महत्वपूर्ण निर्णय किया कि राष्ट्रभाषा की लिपि उनके देश में रोमन लिपि होगी। अब उनके यहां भाषा का विकास एक निश्चित दिशा में होगा। धीरेधीरे बल पाकर महानदी का रूप जिस जलधारा ने ग्रहण कर लिया है उसको लौटा सकना न तो संभव होता है न अभीष्ट। एक समय हमारे देश के कर्णधारों को भी सूझा था कि भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा रोमन लिपि हो जाए। उनकी उस सूझ के कारण मुख्यतया दो थे। एक ओर तो उनकी न्यायप्रियता और देश प्रेम जिस ने उन्हें यह बताया कि हिन्दी उर्दू के झगड़े को समाप्त करने का यह श्रेष्ठतम उपाय है और दूसरी ओर उनकी निज की शिक्षा दीक्षा जिस में उन्हें रोमन लिपि के अतिरिक्त और कुछ सूझ ही न सकता था। सौभाग्य से उनकी सूझ को पर्याप्त बल नहीं मिला और नितान्त असम्भव समझी जाने के कारण उस सूझ के प्रति कोई विशेष रोष की लहर भी हमारे देश में पैदा नहीं हुई। देश के मेधावी लोग जरा मुसकरा कर रह गये। हिन्दी के स्वरूप को लेकर जो वाद चल रहे हैं उनकी पृष्ठभूमि में भी वही न्यायप्रियता और देश प्रेम की भावनायें काम कर रही हैं। इन भावनाओं ने भावुकता का रूप लेकर दृष्टि को निर्मल नहीं रहने दिया देश प्रेम जब देश हित के मार्ग में मां के मोह की तरह रुकावट डाल रहा हो तब देश के मेधावी लोगों को अधिक जागरूक हो जाना चाहिए। उस में रोष की कुछ बात नहीं। आवश्यकता केवल इतनी है कि अपने विवेक को अधिक पैना कर लिया जाए और समस्या के एक पहलू का शान्त मन से विचार किया जाए।

समस्या क्या है? भाषा का स्वरूप ऐसा होना चाहिये कि वह जन साधारण के व्यवहार के योग्य हो। अरबी, फारसी व अंग्रेजी के जो शब्द जनसाधारण में प्रचलित हो चुके हैं उन्हें ज्यों का त्यों रहने दिया जाए। संस्कृत के आधार पर नये जटिल शब्दों का निर्माण न हो। मस्तिष्क के द्वार खुले रखे जाएं ताकि उस में पुराने विचारों की सड़ांद न पैदा हो जाए। शीतल बयार पश्चिम से बह कर आती हो कि पूर्व से, इसका पक्षपात छोड़ कर गले के बटन खोल दिये जाएं, और स्वास्थ्य लाभ किया जाए। इन सब बातों में निस्सदेह पर्याप्त युक्ति का बल है। इस दृष्टि से विचार करें तो हिन्दी की अपेक्षा हिन्दुस्तानी अधिक न्याय संगत रहता है। हिन्दुस्तानी अर्थात् वह भाषा जो हिन्दुस्तान के सभी लोगों का साझा भाषा हो। किसे उचित न जान पड़ेगी? यद्यपि तथ्य यह है कि हिन्दुस्तान को एक साझा भाषा यदि सच्चे अर्थों में तैयार कर जाए और उसमें बंगला, गुजराती, मराठी, तामिल, तेलगू आदि सभी भाषाओं को उचित मान व स्थान दिया जाए तो हिन्दुस्तानी का रूप ऐसा उघड़े कि हिन्दुस्तानी का नारा लगाने वाले स्वयं चक्कर में पड़ जाएं और हिन्दी के प्रेमियों को तनिक जबान न हिलानी पड़े। पर यह नामकरण क्योंकि हिन्दी के मुकाबले में और मतभेद प्रदर्शित करने के उद्देश्य से किया गया है अतः स्पष्ट है कि नामकरण करने वालों के मन में हिन्दी वह भाषा है जो कट्टर हिन्दुओं को

प्रिय है और जिस का आधार संस्कृत है, और हिन्दुस्तानी वह जो मुसलमानों को भी प्रिय है। हिन्दी और हिन्दुस्तानी के भेद का हम ऐसा ही मान लेते हैं। इस से विचार करने में हमें सुगमता होगी पर एक बात स्पष्ट है और वह यह कि हिन्दुस्तानी के समर्थकों के समूचे ध्यान का केन्द्र बिन्दु बोलचाल की भाषा है। एक तरह से उन के विचार की वह सीमा है। यदि वे अपनी सीमा में रहें तो हमारा उन से विवाद बहुत थोड़ा रह जाता। पर जब वे बोल-चाल की भाषा से आगे जाकर पारिभाषिक शब्दों के क्षेत्र में उसी दृष्टिकोण का प्रचार करना चाहते हैं, विरोध का प्रश्न तभी उठता है। किसी भाषा के व्यवहार क्षेत्र मुख्यतया तीन होते हैं। बोल-चाल, साहित्य और विज्ञान। विचार की सुगमता के लिये हम उलटे क्रम से विचार करना शुरू करते हैं। हमारा विश्वास है कि विज्ञान अर्थात् पारिभाषिक शब्दों के क्षेत्र में हमारे दृष्टिकोण से हमारे विरोधी अनायास सहमत हो सकेंगे। इतना ही नहीं बल्कि एक बार वहां सहमत हो जाने पर शेष दोनों क्षेत्रों में भी उन्हें अपनी धारणाओं की चूल बदलनी पड़ेगी।

पारिभाषिक शब्दों में एक गुण होना चाहिये कि वे केवल अभिधान न होकर सञ्ज्ञायें हों। अभिधानों से किसी वस्तु का केवल स्वरूप सामने आता है पर सञ्ज्ञायें उस वस्तु के भीतरी गुणों व क्रिया व्यापार का भी परिचय देती हैं। थर्मामीटर शब्द एक अभिधान है, उस शब्द का उच्चारण करने पर एक साधारण व्यक्ति के सामने उस वस्तु का स्वरूप सामने आ जाता है जो उस शब्द से अभिप्रेत है। पर उस वस्तु का क्रिया व्यापार उस अभिधान के भीतर से स्पष्ट नहीं होता। तापमान शब्द उसकी तुलना में संज्ञा है, क्योंकि इस में वस्तु के क्रिया, व्यापार का भी साथ ही साथ परिचय मिल जाता है। कहा जाएगा कि अंग्रेज़ी शब्द थर्मस भी तो ताप का ही अर्थ देता है। पर इस के उत्तर में हमें दो आपत्तियां हैं, पहली यह कि अंग्रेज़ी भाषा में भी यह शब्द साहित्य से बहिष्कृत है और बोल चाल से भी। गरमी के लिये बोलचाल व साहित्य का शब्द वहां हीट है, थर्मस नहीं। एक अंग्रेज़ी पढ़े लिखे को भी थर्मस शब्द को अभिधान का तरह याद रखना पड़ता है, उसे अपनी दैनिक बोलचाल की भाषा व साहित्य से कोई सहायता नहीं मिलती। तापमान शब्द में यह बात नहीं। ताप शब्द हमारी भाषा में बोलचाल व साहित्य दोनों से अनुमोदित है। दूसरी आपत्ति यह है कि अंग्रेज़ की तुलना में एक भारतीय के लिये तो थर्मस शब्द पूरीतरह स्मृति का बोझ है। थर्मामीटर शब्द अत्यन्त प्रचलित है, तो भी एक भारतीय जो अंग्रेज़ी पढ़ा लिखा नहीं वह थर्मस का अर्थ कतई नहीं समझता। अतः उसके लिये थर्मामीटर शब्द नितान्त अभिधान है, संज्ञा नहीं। अब एक दो उदाहरण हम ऐसे लेते हैं जिन में यह कठिनता और उघड़ेगी। अंग्रेज़ी का शब्द है, मैनुस्क्रिप्ट। थर्मामीटर की तरह इस शब्द का व्यवहार भी ज्यों का त्यों हिन्दी बोलते और लिखते समय कर लिया जाता है। इस में भी मैनु शब्द लैटिन का है और हाथ का वाची है। ग्रीक शब्द थर्मस शायद अनेक अंग्रेज़ी पढ़े लिखे लोगों के सामने सार्थक हो भी, पर लैटिन शब्द मैनु के वाच्य अर्थ से अनेक अंग्रेज़ी पढ़े लिखे भी अपरिचित होंगे हमारे शरीर में तीन प्रकार की नाड़ियां हैं। इन्हें कहते हैं। आर्टरीज़ नवर्स और वेन्स एक एम० बी० बी० एस के भारतीय विद्यार्थी को ये शब्द ज्यों के त्यों रटाये जाते हैं। उस के हाथ में इस के लिये कोई हिन्दी शब्द नहीं थमाया जाता। परिणाम यह होता है कि शुरू शुरू में उसे यह बात बाकायदा रटनी पड़ती है कि इन तीनों से कौनसी भिन्न-भिन्न नाड़ियां अभिप्रेत हैं, और उनके क्रिया व्यापार क्या हैं। डा० रघुवीर का इन तीनों के लिये क्रमशः अनुवाद है—रोहणी, नीला और चेता। इन तीनों शब्दों में सौन्दर्य यह है कि ये मात्र अभिधान न होकर

अभिप्राय संशायें है। उन के भीतर ही यह अभिप्राय आपूर्ण है कि नाड़िया तीन प्रकार की होती है। लाल रुधिर को वहन करने वाली, नीले रुधिर को वहन करने वाली, और चेतनता को वहन करने वाली। और फिर यह तीनों शब्द डा० रघुवीर के अपनी ओर से किये गये अनुवाद न हो कर प्राचीन अनुवाद है। उन्होंने जहा तहा से इन्हें आविष्कृत और संकलित भर किया है।

इस ढग से परिभाषिक शब्दों का वैज्ञानिक अनुवाद हा जाने पर हिन्दी भाषा का महान् उपकार होगा, यही बात नहीं है। इस का सब से बड़ा लाभ है भारतीय छात्रों के समय और शक्ति की बचत। उदाहरण के लिये हम एम० बी० बी० एस० का पाठ्य क्रम ही ले लेते हैं। प्रत्येक विद्यार्थी को ५ वर्ष के समय में सैंकड़ो नहीं हजारों शब्द ऐसे रटने पड़ते हैं जो उसके लिये निरे अभिधान हैं। उस के सामने वनस्पति विज्ञान, जीव विज्ञ न, भौतिक विज्ञान और रसायन शास्त्र हौवा बन कर आते हैं। उसका साहस प्रशसनाय है कि वह एक एक करके परीक्षा के ५ दलदल सुरक्ष प पार कर लेता है। हमारी धारणा है कि यदि वह समूचा पाठ्यक्रम उसे अपनी ही भाषा में पढ़ाया जाए तो न केवल उसके ढाई वर्ष बच सकते हैं बल्कि उसका अध्ययन उसके लिये अधिक सुपच और अधिक गहरा सिद्ध होगा। इस प्रकार के पारिभाषिक शब्दों का एक बार चलन हो जाने से एक लाभ यह होगा कि उनके आधार पर हस्तगत की गई विद्याए जनसाधारण के लिये भी आतंक बन कर न रहेंगी। विद्वान् और साधारण व्यक्ति के बीच उन विषयों पर चर्चायें चल सका करेंगी। इस देश का बौद्धिक धरातल ऊंचा हेगा। विद्वान् को अपनी विद्या का बोझा संभाले रखने के लिये अभिधानों की आजीवन आवृत्तियां न करनी पड़ेंगी। और फिर हिन्दी वास्तविक अर्थों में समृद्ध कहलावेगी क्योंकि उस के जानने वाले कगाल न होंगे। अब तो दशा यह है कि निरा हिन्दी जानने वाला भोंदू समझा जाता है।

हमने ऊपर कहा था कि किसी भी भाषा के व्यवहार क्षेत्र मुख्यतया तीन होते हैं। बोल चाल, साहित्य और विज्ञान। हमने विज्ञान अर्थात् पारिभाषिक शब्दों के सम्बन्ध मे कुछ विचर प्रकट किये है। आगे चलने से पूर्व हम एक बात स्पष्ट कर देना चाहते हैं। पारिभाषिक शब्दों का अनुवाद करते समय दो बातों का ध्यान अवश्य रखना चाहिये। पहला यह है कि जहा तक हो सके वे शब्द नये न होकर प्राचीन हों जो कि उन अर्थों में प्रयुक्त होते आये हों। इस से लाभ यह होगा कि प्राचीन ग्रन्थों में प्रवेश करते समय हमें नई सीढ़ियां नहीं लेनी पड़ेंगी। प्राचीन और अर्वाचीन अध्ययनों में तारतम्य बना रहेगा। दूसरी बात यह है कि शब्दों का निर्माण इस ढंग का किया जाए ताकि उनके आवश्यक रूपान्तर भी आसानी से घड़े जा सकें। इन दृष्टियों से डा० रघुवीर का प्रयत्न अत्यन्त सराहनीय है।

काशी की नागरी प्रचारिणी सभा ने भी इस दिशा में सराहनीय प्रयत्न किया है। उनका महत्व इस दृष्टि से बहुत अधिक है कि १६७८ में जब कि इन बातों की ओर किसी देशवासी का ध्यान तक न था, उन्होंने यह कार्य अपने हाथ में लिया। अंग्रेजी तथा अन्य विदेशी भाषाओं से हिन्दी में आये हुए शब्दों की संख्या लगभग ३६ हजार उनके कोषों में है। नागरी प्रचारिणी सभा अपने आठ कोषों मे केवल १० हजार शब्दों का ही अनुवाद कर पाई। उन में भी अधिकाश अनुवाद ऐसे हैं जो वैज्ञानिक अनुवाद नही कहे जा सकते। उनके अवान्तर रूप नहीं घड़े जा सकते। उदाहरण के लिये उनके दो शब्द लीजिए, आम्लजन और नत्रजन। इन अनुवादों के आधार पर आक्साइड, आक्सीडाइजेशन आदि अवान्तर रूप बना सकना कठिन है। हम पहले कह चुके हैं कि अनुवाद अभिधान न होकर सशाये हों नाइट्रोजन के स्थान पर नत्रजन अनुवाद तो अभिधान हुआ और

कृधि मां देववन्तम्

श्री मनोहर विद्यालंकार

इन्द्र मृड मह्यं जीवातुमिच्छ चोदय धियमयसो न धाराम्।
यत्किचाहं त्वायुरिदं वदामि तज्जुषस्व कृधि मा देववन्तम्॥
ऋक् ६-४७-१०

अर्थ—मैं (भरद्वाजः) सब का भरण पोषण करने वाला सब को अन्न बल देने वाला, व (गर्गः) सबको उपदेश देकर सन्मार्ग पर लाने वाला हू।

इसलिये (इन्द्रमृड) हे परमैश्वर्यशालिन मुझ पर प्रसन्न हो (मह्य जीवातुमिच्छ) मेरे लिये अन्न और जीवन की इच्छा कर, (अयसो न धारा धिय चोदय) लोहे की धार के समान मेरी बुद्धि और कर्मों को सूक्ष्म तथा उज्ज्वल कर, और सन्मार्ग की ओर प्रेरित कर। (त्वायुः) तेरी कामना करता हुवा मैं (यत्किचाह वदामि) मैं जो कुछ भी कहता हू (तज्जुषस्व) उसे सत्यरूप में स्वीकार कर, और (मा देववन्तं कृधि) मुझे दिव्य गुणों से युक्त तथा पुत्रों वाला बना।

अर्थ—मैंने यदि कोई अपराध किया है अर्थात् असंयम या नियमोल्लङ्घन के द्वारा अपने स्वास्थ्य को बिगाड़ा है, और अपने जीवन से निराश होगया हूँ, तो (इन्द्रमृड) हे इन्द्र मुझे क्षमा कर और (जीवातु मिच्छ) ओषाध दे तथा मुझ में जीने की इच्छा उत्पन्न कर। केवल इतना ही नहीं अपितु (मां देववन्त कृधि) मुझे पुत्रों वाला बना। मैं केवल स्वस्थ हो न हो जाऊ—स्वस्थ पुत्र को भी प्राप्त करूं।

परिणाम—(१) बड़े से बड़ा अपराध करके भी जीने की इच्छा नहीं छोड़नी चाहिये। निराशा सब से बड़ी दुर्गति है।

(२) वास्तविक रूप में मनुष्य जो भी कामना करता है वह उसकी अवश्य पूर्ण होती है।

(३) दूसरों को उपदेश देने वाला, दान देने वाला भी पथ-भ्रष्ट हो सकता है। लेकिन तब भी निराश नहीं होना चाहिये।

शब्दार्थ— गर्गः गृणाति उपदिशति इति। (भरद्वाजः) अन्न और बल के द्वारा भरण पोषण करने वाला। (मृड) क्षमा करना, प्रसन्न होना, (जीवातुम्) जीवन, अन्न, ओषधि चुद – प्रेरणा करना, तीव्र करना। (देववन्तम्) देवों वाला, देव-दिव्यगुण, तथा पुत्र, या बालक।

★

आक्सीजन के स्थान पर ओषजन भी। ध्वनि की समता का लेकर हिन्दी अनुवाद बनाने के मूल में बौद्धिक प्रमाद के अतिरिक्त और कुछ नहीं। इस प्रकार के अनुवाद तो कुछ आर्यसमाजी प्रचारकों द्वारा भी हुए हैं, जैसे जापान का जयप्राण और जर्मन का शर्मन। पर यह प्रवृत्ति उपहासास्पद है। चाहिए यह कि किसी भी पारिभाषिक शब्द को हाथ में लेते ही गहरा उतरा जाए उस का पूर्ण अभिप्राय समझने के लिये उसके गुण समूह व क्रिया व्यापार को हृदयंगम किया जाए। फिर धातु प्रत्यय और उपसर्गों के सम्यक् प्रयोग से ऐसा अनुवाद किया जाए जो लघु होने पर भी अधिक से अधिक संज्ञा हो। महाभाष्कार ऋषि पतञ्जलि का कहना है कि—"लघ्वर्थं संज्ञाकरणम्"। संस्कृत में लगभग दो हजार धातु हैं। उन में से ६०० धातु काफी प्रयोग में हैं और उनमे भी दो ढाई सौ धातु अत्यधिक चालू हैं। प्रत्ययों और उपसर्गों की भी वहां कमी नहीं है। कमी है केवल भावना और उत्साह का। नागरी प्रचारिणी सभा काशी की भावना और उत्साह धन्य है। अपने समय की दृष्टि से उनका उद्योग भगीरथ प्रयत्न से कम न था। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रयत्न से तो वह प्रयत्न फिर भी अधिक प्रतिभा-पूर्ण था। सम्मेलन से प्रकाशित शासन शब्द संग्रह

[देखिए पृष्ठ २१० पर]

★

जैन व बौद्ध मत की एकात्मता

आचार्य शिवपूजनसिंह कुशवाहा 'पथिक'

महर्षि दयानन्द सरस्वती अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ सत्यार्थ-प्रकाश के द्वादश समुल्लास में लिखते हैं— "इसमें राजा शिवप्रसाद जी इतिहासतिमिर नाशक ग्रन्थ में लिखते हैं कि इनके दो नाम हैं एक जैन और दूसरा बौद्ध। ये पर्यायवाची शब्द हैं, परन्तु बौद्धों में वाममार्गी मद्यमांसाहारी बौद्ध हैं उनके साथ जैनियों का विरोध है परन्तु जो महावीर और गौतम गणधर हैं उनका नाम बौद्धों ने बुद्ध रक्खा है, और जो जैनियों ने गणधर और जिनवर इसमें जिनकी परम्परा जैनमत है उन राजा शिवप्रसाद जी ने "इतिहास तिमिर नाशक" ग्रन्थ के तीसरे खण्ड में लिखा है कि "स्वामी शङ्कराचार्य" से पहले जिनको हुए कुल हजार वर्ष के लगभग गुजरे हैं। सारे भारतवर्ष में बौद्ध अथवा जैनधर्म फैला हुआ था इस पर नोट—"बौद्ध कहने से हमारा आशय उस मत से है जो महावीर के गणधर गौतम स्वामी के समय से शङ्कर स्वामी के समय तक वेद विरुद्ध सारे भारतवर्ष में फैला वह और जिसको अशोक और सम्प्रति महाराज ने माना उससे जैन बाहर किसी तरह नहीं निकल सकते। जिन जिससे जैन निकला और बुद्ध जिससे बौद्ध निकला दोनों पर्यायवाची शब्द हैं, कोश में दोनों का अर्थ एक ही लिखा है और गौतम को दोनों मानते हैं वर्ना दीपवंश इत्यादि पुराने बौद्ध ग्रन्थों में शाक्यमुनि गौतम बुद्ध को अकसर महावीर ही के नाम से लिखा है। पस उसके समय में एक ही उनका मत रहा होगा। हमने जो जैन न लिखकर गौतम के मत वालों को बौद्ध लिखा उसका प्रयोजन केवल इतना ही है कि उसको दूसरे देशवालों ने बौद्ध ही के नाम से लिखा है।"

ऐसा ही 'अमर कोष' में भी लिखा है:—

सर्वज्ञः सुगतो बुद्धो धर्मराजस्तथागतः।
समन्त भद्रो भगवान्मारजिल्लोकजिज्जिनः ॥१॥
षडभिज्ञो दशबलोऽद्वयवादी विनायकः।
मुनीन्द्रश्रीघनःशास्ता मुनिःशाक्यमुनिस्तुयः ॥२॥
स शाक्यसिंहः सर्वार्थः सिद्धश्शौद्धोदनिश्चसः।
गौतमश्चार्कबन्धुश्च मायादेवीसुतश्च सः ॥३॥

—अमरकोष का. १ श्लोक ८ से १० तक।

अब देखो! बुद्ध जिन और बौद्ध तथा जैन एक के नाम हैं वा नहीं? क्या अमरसिंह भी बुद्ध जिनके एक लिखने में भूल गया है? जो अविद्वान जन हैं वे तो न अपना जानते और न दूसरों का, केवल हठमात्र से बड़ाया करते हैं परन्तु जो जैनों में विद्वान् हैं वे सब जानते हैं कि 'बुद्ध' और 'जिन' तथा 'बौद्ध' और 'जैन' पर्यावाची हैं इसमें कुछ संदेह नहीं।'

महर्षि के इस लेख पर जैनियों ने आक्षेप किया है। श्री अजीतकुमार जैन शास्त्री ने अपनी पुस्तक "सत्यार्थ-दर्पण" प्रथमावृत्ति के पृष्ठ ८२ में लिखा है—

'जैनधर्म के विषय में स्वामीजी ने सत्यार्थप्रकाश में अन्यभूलों के सिवाय अपनी एक महा बहुत मोटी भूल लिख मारी है, कि जनधर्म, बौद्ध धर्म की मूल में भिन्नता नहीं है अर्थात् एक ही हैं।.........."

हम इस लेख द्वारा यह प्रदर्शित करना

चाहते हैं कि महर्षि का लेख सर्वथा सत्य, युक्तियुक्त है। हम इस पर ऊहापोह से विचार करते हैं।

यह तो सभी ऐतिहासिक विद्वान् मानते हैं कि बुद्ध और महावीर दोनों ही समकालीन हैं। महर्षि जी ने जो कुछ लिखा है, प्रमाण सहित लिखा है। उन्होंने प्रसिद्ध जैन विद्वान् राजा शिवप्रसाद जी सितारेहिन्द के लेख तथा अमरकोष का प्रमाण दिया है। जब एक जैन विद्वान् बौद्ध, जैन को एक लिखता है तो इसमें आक्षेप क्यों ? यह ठीक है कि आधुनिक कुछ भारतीय इतिहासकार इन दोनों मतों को भिन्न २ मानते हैं, पर प्राचीन काल में यह बात नहीं थी। प्राचीनकाल में दोनों एक ही समझे जाते थे। यथा—पं० भगवतशरण जी उपाध्याय एम० ए० लिखते हैं—बौद्ध और जैन धर्मों में प्रचुर परिमाण में समानता है। इसका मुख्य कारण दोनों का ब्राह्मण-धर्म के वेदों का विरोधी होना और अहिंसा की प्रधानता है। दोनों की पारस्परिक समानता के कारण बहुत दिनों तक उन्हें एक दूसरे का अंग समझा गया था। (प्राचीन भारत का इतिहास प्रथम संस्करण पृष्ठ ६२)।

श्री कैलाशचन्द्र शास्त्री, प्रधानाध्यापक श्री स्याद्वाद दि० जैन महाविद्यालय काशी लिखते हैं—पहले अनेक विद्वानों का यह मत था कि जैनधर्म बौद्धधर्म की शाखा है। (जैनधर्म द्वीतीय संस्करण पृष्ठ ३७६)।

'सत्यार्थ-दर्पण' के लेखक ने लिखा है—अमरकोष के २, ३ श्लोक पढ़कर स्वामी जी ने जैन धर्म और बौद्ध धर्म को एक धर्म रूप समझने में भारी धोखा खाया है। अतः कोषों के प्रमाण से भी इसका फैसला देखिए—

प्रथम तो अमरकोष के ही द्वितीय काण्ड ब्रह्मवर्ग के श्लोक ६ वे ७ वें के बीच में क्षेपक श्लोक में लिखा है कि—

वैशेषिके स्यादौलूक्यः सौगतः शून्यवादिनि।
नैयायिकस्त्वक्षपादः स्यात्स्याद्वादिक आर्हतः॥

अर्थात् औलूक्यदर्शन वैशेषिक मत है, सौगत यानी बौद्ध शून्यवादी होते हैं, नयायिक का दूसरा नाम अक्षपाद है और स्याद्वादी आर्हत यानी अर्हत को मानने वाला जैन दर्शन है। (पृष्ठ ८५)

समीक्षा—अमरकोष के इस श्लोक में आपके विचार की सिद्धि कुछ भी नहीं है। यहां तो यह प्रदर्शित किया गया है कि—वस्तु का वर्णन यद्यपि वैशेषिक तथा नैयायिक ने भिन्न प्रकार से किया है तथापि ये दोनों मूल में एक ही हैं। इसी प्रकार सौगत क्षणिकवादी हैं और आर्हत को मानने वाले स्याद्वादी, तो भी ये दोनों मूल में एक हैं। अन्यथा वैशेषिक के साथ क्यों नैयायिक को तथा क्यों शून्यवादी के साथ रक्खा ?

पुनः आप पृष्ठ ८५, ८६ में लिखते हैं—स्वामी जी यदि पूरा अमरकोष देख जाते तो उन्हें बौद्धधर्म की एक समझने की भूल कदापि नहीं करनी पड़ती। 'जिन' शब्द का अर्थ 'बुद्ध' अमरकोष में देखकर जो स्वामी जी ने

गलती हुई है। उसके परिशोधन के लिए हम 'मेदिनीकोष' का प्रमाण देते हैं। देखिए ! मेदिनीकोष में स्पष्ट लिखा है–
जिनोऽर्हन्ति च बुद्धे च पुंसिस्यात्त्रिषु जित्वरे।
अर्थात् पुल्लिङ्ग में 'जिन' शब्द अर्हन्त यानी जैनधर्म चलाने वाले और 'बुद्ध' अर्थात् बौद्ध मत के संस्थापक के लिए आता है तथा जीतने वाले के लिए 'जिन' शब्द तीनों लिङ्गों में उपयुक्त होता है। इस प्रकार दोनों कोष स्वामी जी के लिखने को असत्य ठहराते हैं।

समीक्षा—आपने 'अमरकोष' देखकर भी कौन सी ऐसी बात अन्वेषण की जिससे स्वामी जी महाराज का प्रस्तुत किया हुआ 'अमरकोष' का प्रमाण 'सर्वज्ञः सुगतो बुद्धो धर्मराजस्तथागतः । समन्तभद्रो भगवान्मार जिल्लोक जिज्जिनः' भूल प्रमाणित हो।

यदि यह श्लोक क्षेपक है तो इसके लिए प्रमाण तो दिए होते। बिना प्रमाण आपकी बात को कौन मान सकता है ?

श्री नरेन्द्रनाथ वसु तथा हिन्दी के धुरन्धर विद्वानों ने भी इस श्लोक को प्रामाणिक माना है। (हिन्दीविश्वकोष, पञ्चदश भाग, पृष्ठ ४१६, सन् १६२८ ई० कलकत्ता संस्करण)

आप बुद्ध के अन्य नामों में- जिन, सुगत, तथागत, अर्हत्, शास्ता, भागवत······ ······ मानते हैं। (वही, पृष्ठ ५३३)।

यादव-प्रकाश के 'वैजयन्तीकोष' में 'जिन' शब्द दो बार भिन्न २ स्थानों में आया है। एक बार बुद्ध के लिए और दूसरी बार अर्हत अथवा जैनों की तीर्थिका के लिए। (वैजयन्तीकोष ऑपेट संस्करण, पृष्ठ ५)।

सेन्ट पीटर्स वर्ग डिक्शनरी में 'जिनपुत्र' का अर्थ बोधिसत्त्व लिखा है। श्री वाराह-मिहिराचार्य ने अपनी 'बृहत्संहिता' के ६१ वें अध्याय में भी लिखा है– अक्यान् रूर्वहितस्य शान्तमनसो नग्नाञ्जिनानां विदुः॥१६॥ वैजयन्तीकोष के लेखकों को किसने भ्रम में डाल दिया था कि उन्होंने 'अर्हत' और 'जिन' शब्दों के लिए 'बुद्ध' और 'जिन' दोनों लिखा है यथा—

बुद्धस्तु श्रीघनश्शास्ता
बोधिसत्वो विनायकः ॥३२॥
समन्तभद्र सर्वज्ञो
मारजिल्लोक जिज्जिनः।
षडभिज्ञो दशबलोधर्म
राजस्तथागतः ॥३३॥
मुनिनुस्सुगतश्शाक्यो
मुनिरद्वयवाद्यमि ।
शाक्यसिंहस्तु सर्वार्थ
सिद्धश्शौद्धोद निर्गुरुः ॥३४॥
गोतमश्चार्क बन्धुश्च
जित्वरर्ह स्त्रिकालदृक।

"शब्दार्थ चिन्तामणि कोष "मे—'अर्हन्' पुं०जिने, जिन भेदे, अनादिसिद्ध, जीवास्तिकाये, क्षपणे, बुद्धे।" 'जिन'—अर्हति, बुद्धे, विष्णौ, जित्वरे ऐसे ५ः अर्थ हैं।

ऐसी अवस्था में अमर कोष का प्रमाण न तो क्षेपक ही रहता है और न किसी को धोखे में डालता है, क्योंकि जिस प्रकार अमर कोष–

बौद्ध और 'जिन' को एकार्थी बतलाता है वैसे ही वैजयन्ती, शब्दार्थ चिन्तामणि व आप्टेकृत कोष में कहते हैं।

'कोषों' के अतिरिक्त यदि साहित्यावलोकन करें तो बहुत सी पुस्तकों में 'जिन' शब्द को 'बुद्ध' का पर्यायवाची लिखा है। यथा—

नैषधकाव्य, कादम्बरी, मुद्राराक्षसनाटक, दशकुमार चरित्र, पदचन्द्रिका, पञ्चचन्द्र इत्यादि अनेक प्रसिद्ध पुस्तकों के टीकाकार श्री प० नारायण शास्त्री, महोपदेशक श्री हरिदास सिद्धान्तवागीश, श्री अश्वनी कुमार भट्टाचार्य, विद्याभूषण श्री बा० ब्रजरत्न दास मंत्री-हिन्दी साहित्य सभा-काशी प्रभृति इन पुस्तकों के शब्द-जिनम्-अर्थात् बौद्ध विशेषम् बोधिसत्वेन-अर्थात् जिनभदारकेण; नातचपण-कान-अर्थात् बौद्ध विशेषान्, अर्हताम्-अर्थात् विशेषाम्; अर्हतानाम्-अर्थात्-बुद्ध भक्तानाम्, अर्हत्-जिनदेव; जैनदेवता बौद्ध संन्यासी प्रभृति अर्थ किए हैं, जिससे-'जिन'-शब्द 'बुद्ध' का और 'बुद्ध'-'जिन' का पर्यायवाची होना स्पष्ट सिद्ध है।

'सत्यार्थ-दर्पण' पृष्ठ ८८ में आप लिखते हैं—राजाशिव प्रसाद सितारे हिन्द अपने एक पत्र में लिखते हैं कि "जैन और बौद्ध एक नहीं हैं, सनातन से भिन्न भिन्न चले आये हैं, जर्मन देश के एक बड़े विद्वान् ने इसके प्रमाण में एक ग्रन्थ छापा है, 'इतिहास तिमिर नाशक' का आशय स्वामी जी की समझ में नहीं आया।

समीक्षा—इस लेख से तो इतिहास तिमिर नाशक' स्वयं एक निरर्थक पुस्तक सिद्ध होती है क्योंकि किसी भी सत्य की असत्य से अलग २ करने की नीति का विरोधी है। आपने पूरा प्रमाण भी नहीं दिया कि यह पत्र उन्होंने कब कहां, किस को लिखा था। यह पत्र तो राजा शिवप्रसाद जी के नाम से किसी का कल्पित है।

'इतिहास तिमिर नाशक' में कौन सी ऐसी बात है जो स्वामी जी महाराज के समझ में नहीं आई। इसको तो थोड़ी सी हिन्दी जानने वाला भी समझ सकता है कि श्री शिवप्रसाद जी ने 'जिन' और 'बुद्ध' को पर्यायवाची शब्द माना है, अतएव आपका आक्षेप निराधार कल्पित है।

आप पुनः पृष्ठ ८८ में दो इतिहास वेत्ताओं का प्रमाण देते हैं कि वे जैन और बौद्ध को भिन्न २ मानते हैं।

इस प्रकार तो हम भी तीन पाश्चात्य विद्वानों के लेख देते हैं जिन्होंने जैन और बौद्ध एक माना है। यथा—

"डा० बुहलर का कहना है कि बौद्ध धर्मावलम्बी स्वत. ही जैनियों के तीर्थङ्कर सम्बन्धी कथन की पुष्टि करते हैं" (दि जैन्स पृष्ठ २२-२३, जिल्द ८, १०८)।

जेनरल जे. आर फारलङ्ग का मत है······

"यह विशेषतया जैन सम्प्रदाय था जिसको उनके समस्त बौद्धों और विशेषकर ईसा के पूर्व की छठी शताब्दी के २४वें तीर्थङ्कर महावीर ने, जो सन् ५९८-५२६ ईस्वी के पूर्व हुए हैं, नियमबद्ध रक्खा था।"······(शॉर्ट स्टडीज़ इन दि साइन्स ऑफ कम्पेअरेटिव रिलिजन्स पृष्ठ २४३-२४४)।

★

साहित्य परिचय

[प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियां आनी आवश्यक हैं। एक पुस्तक प्राप्त होने पर केवल प्राप्त स्वीकार किया जा सकेगा। —सम्पादक]

विचार स्वातंत्र्य के प्रांगण में—लेखक और प्रकाशक – श्री स्वामी सत्यदेव परिव्राजक। सत्यज्ञान निकेतन, ज्वालापुर, हरिद्वार। पृष्ठसंख्या २०८ मूल्य १।।)।

गतवर्ष श्री स्वामी जी ने अपनी आत्मकथा प्रकाशित की थी। उस आत्मकथा के कुछ एक प्रकरणों को लेकर देश की पत्र-पत्रिकाओं में बड़ा तूफान उठ खड़ा हुआ था। भारत सरकार के सचिवालय तक में उसकी बड़ी गरमागरम चर्चा चल पड़ी थी। पुस्तक के कई प्रकरणों की बड़ी तीखी आलोचनाएं भी हुई थीं। एक पत्रकार महोदय ने तो स्वामी जी की इस पोथी को सम्प्रदायवाद को सिखाने वाली तक घोषित किया था। इस नई पुस्तक में स्वामी जी ने उन विवेचकों के मन्तव्यों और विचारों का विश्लेषण करते हुए अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट किया है। स्वामी जी को इस बात का अतिशय आश्चर्य है कि प्रामाण्यवाद, इलहामवाद और सम्प्रदायवाद का घोर विरोधी होने पर भी उन्हें आलोचक महोदय ने सम्प्रदायवाद का शिक्षक करार दे दिया है। कट्टर बुद्धिवादी होना ही स्वामीजी अपनी विशेषता बताते हैं। अपनी सभी पुस्तकों में उन्होंने अपना यह मन्तव्य अनेक प्रकार से व्यक्त किया है। इस नई पुस्तक में नये सिरे से आपने अपना स्वाधीन दृष्टिकोण समझाने का सुंदर प्रयत्न किया है। प्रत्यालोचना की शैली बड़ी ओजपूर्ण और मनोहर है। पुस्तक के अन्त में दिये गए तीन निबंध – (१)बुद्धिवाद का प्रशस्त मार्ग (२)सतुलन का ईश्वरीय नियम और (३)सभ्यता और संस्कृति, बड़ी खूबी से लिखे गए हैं। स्वाध्याय प्रेमी जनों को ये तीनों निबन्ध बहुत अच्छा मानसिक आहार प्रदान करेंगे। संस्कृति और सभ्यता में क्या प्रभेद है और जीवन में उसकी परिणति किस प्रकार होती है- यह पढ़ते ही बनता है। बुद्धिवाद पर भी आपने बड़े उदार और व्यापक दृष्टिकोण से विचार किया है। नवयुवक इन निबन्धों को पढ़कर बौद्धिक स्वातंत्र्य की दृष्टि प्राप्त कर सकते हैं। शैली विश्लेषणात्मक है और भाषा बड़ी ओजस्वी, प्रवाहपूर्ण, और रोचक है। पुस्तक की छपाई सफाई सुंदर है। —शंकरदेव।

ट्रिपल योग (अंग्रेजी —लेखक श्री स्वामी शिवानन्द। प्रकाशक, योग वेदान्त फौरेस्ट युनिवर्सिटी, आनन्द कुटीर, ऋषिकेश। आकार २०×३०/१६, पृष्ठ संख्या १६८, मूल्य २)।

डिवाईन स्टोरीज़ (अंग्रेजी)—लेखक तथा प्रकाशक वही, दूसरा संस्करण, मूल्य १।।)

कल्याण का बालक अङ्क'—विविध चित्रों से सुशोभित ८०० पृष्ठों का यह बड़ा विशेषांक स्वभावतः मुग्धकारी है। लेख, कविता, कहानी, उपाख्यान, देश–विदेश, नवीन प्राचीन सभी वातावरण तथा जीवन से सम्बन्धित है। प्रकाशकों का मुख्य ध्येय पाठकों में धार्मिक रुचि उत्पन्न करना है। बालक कृष्ण, बालक राम पर प्राचीन काल से ही हमारे साहित्य में पर्याप्त सामग्री है। कल्याण के अधिकारियों ने इस ओर जनता का ध्यान खींच कर एक सामयिक आवश्यकता की पूर्ति की है इसमें कोई सन्देह नहीं। लेखकों में देश के गण्यमान्य व्यक्ति हैं इनमें से अनेक का बालक की शिक्षा योजना से सम्बन्ध भी है।

बालक की ओर आज देश का ध्यान जाना स्वाभाविक है। बालक के विकास की गति उसके जीवन की समस्यायें, उसकी आवश्यकताएं, उसके विकास आदि पर हमें सैद्धान्तिक रूप से विचार करना है तभी हम इस सम्बन्ध में अपनी क्रियात्मक नीति निर्धारित कर सकेंगे। बालक से न केवल राष्ट्र तथा अध्यापक ही सम्बन्धित हैं परन्तु हरएक स्त्री पुरुष माता तथा पिता के नाते उस सम्बन्ध में एक उत्तरदायित्व रखता है। अब इस दृष्टि से 'बालक अङ्क' के

लेखों की हम विवेचना करते हैं तो बहुत उत्साह नहीं होता। माता पिताओं के लिए इसमें उचित सामग्री बहुत ही अल्प है। न राष्ट्र के कर्तव्यों की ओर ही ध्यान दिलाया गया है। समाज बालकों के सम्बन्ध में क्या नीति अपनाए उनको स्वाभाविक विकास किया के लिए क्या कदम उठाए इस पर भी हमें बहुत प्रकाश नहीं मिलता। धार्मिक दृष्टिकोण विश्वास का मार्ग है। इसमें हमें तभी सहायता मिलती है जब हम अपने विश्वास को एक सत्य के ऊपर आधारित करें। भावुकता सत्य नहीं है बच्चों के लिए जो अच्छी २ बाल कथाए दी गई हैं वे भी बहुत लाभकारी नहीं हो सकतीं वे भले ही किशोर बालकों के लिए प्रेरणा प्रदान करें परन्तु अधिकांश बच्चों के लिए यह काम का नहीं। आवश्यकता है कि बालक की विभिन्न अवस्थाओं में उनके लक्षण उनके लिए आवश्यक सामग्री (जिनमें कथाए भी सम्मिलित हैं) इनका संकलन किया जाता। आशा है कल्याण के अधिकारी इस ओर ध्यान देंगे और देश की एक महान् आवश्यकता की पूर्ति के लिए और प्रयत्न करेंगे। —कुञ्जविहारी सिंह।

वेदवाणी (वेदाङ्क)—विद्वद्वर पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु के सम्पादकत्व में बनारस से 'वेदवाणी' कुछ वर्षों से निकल रही है। यह पत्रिका वैदिक विषयों पर विचार पूर्ण, मौलिक पाठ्यसामग्री देने तथा ऋषि दयानन्द की वेदार्थ शैली का प्रचार करने के कारण अपना विशेष स्थान रखता है। प्रस्तुत वेदाङ्क इसके ५वें वर्ष का प्रथम, द्वितीय अंक का सम्मिलिताङ्क है जो विशेषांक के रूप में प्रकाशित हुआ है। २०×३०/८ आकार के १२४ पृष्ठों का यह अंक वेद सम्बन्धी सुन्दर, खोजपूर्ण लेखों से सुसज्जित है। डा० वासुदेव शरण अग्रवाल पं० बुद्धदेव विद्यालङ्कार, पं० युधिष्ठिर मीमांसक, पं० जयदेव विद्यालङ्कार, आचार्य नरदेव शास्त्री दर्शन केसरी आदि वैदिक साहित्य के कई प्रमुख विद्वानों के अनुसन्धानपूर्ण लेख इसमें हैं। पृथक् इस अंक का मूल्य १।।) तथा पत्रिका का वार्षिक मूल्य ४॥) है मिलने का पता है—वेदवाणी कार्यालय पो० आजमगढ़ पैलेस बनारस न० ६। वेद प्रेमियों को यह वेदाङ्क पढ़कर लाभ उठाना चाहिए। —रामनाथ वेदालङ्कार।

वैदिक सूक्तियां — लेखक पं० रामनाथ वेदालङ्कार। प्रकाशक—प्रकाशनमन्दिर, गुरुकुलकांगड़ी, जिला सहारनपुर, उत्तर प्रदेश। मूल्य १॥)।

गुरुकुल कांगड़ा के वेदोपाध्याय पं० रामनाथ ने इस पुस्तक में अथर्ववेद की १००० सूक्तियों का अत्युत्तम संग्रह किया है जिनको बालक बालिका, युवक युवती सब सुगमता से स्मरण कर सकते हैं पुस्तक को प्रभु चरणों में, गुणों की पुकार, गृहस्थ जीवन, उन्नति के पथ पर, शरीर रक्षा आदि इन ६ अध्यायों में विभक्त करके प्रत्येक विषय से सम्बद्ध सरल और छोटे २ वैदिक सुभाषितों का संग्रह सुयोग्य लेखक ने सरल अनुवाद सहित कर दिया है। इस से वेदों के प्रचार और लोकप्रिय होने में सहायता मिलेगी। इस परिश्रम सूचक उत्तम संग्रह के लिये पं० रामनाथ धन्यवाद के पात्र हैं। आशा है अन्य वेदों की अमूल्य सूक्तियों का भी ऐसा ही उत्तम संग्रह शीघ्र प्रकाशित किया जाएगा। विविध विषयों में मातृ भूमि, गोपालन, राजा, कृषि, भोजन जीवात्मादि विषयक सूक्तियों का संकलित किया गया है। पुस्तक सर्वथा उपादेय और प्रचार योग्य है। —धर्मदेव।

★

गुरुकुल समाचार

वार्षिक उत्सव का कार्य क्रम

इस वर्ष उत्सव का कार्यक्रम विशेष रूप से आकर्षक तथा उपयोगी रखा गया है। विश्वास है कि इस धार्मिक मेले में पाठक अधिक से अधिक संख्या में पधारेंगे। कार्य क्रम इस प्रकार है—

३० चैत्र २००६

प्रातः—

७ से ७-३० तक सन्ध्या प्रार्थना तथा हवन यज्ञ।

७-३० से ८ तक कुल-पताका का अभिवादन तथा ध्वजगीत।

८ से ८-३० तक भजन।

८-३० से ९-३० तक व्याख्यान श्री स्वामी ब्रनानद जी महाराज। विषय—मौत की मौत।

९-३० से ११ तक वेद सम्मेलन।
सभापति-श्री प० विश्वनाथ वेदोपाध्याय, विद्या मार्तण्ड।

मध्यान्ह—

१ से १-३० तक भजन।

१-३० से २-३० तक व्याख्यान श्री प० बिहारीलाल शास्त्री। विषय—आर्यों का सार्व भौम राज्य।

२-३० से ३ तक भजन।

३ से ४-३० तक सरस्वती सम्मेलन।
विषय—राष्ट्र संघ एवं विश्वशान्ति करणाय कल्पते। सभापति-श्री बाबूराम जी सक्सेना प्रो०विश्वविद्यालय इलाहाबाद।

रात्रि—

७-३० से ८ तक भजन।

८ से ९ तक व्याख्यान श्री प्रो०सत्यव्रत सिद्धातालङ्कार। विषय—मनुष्य की वास्तविक समस्या। भौतिक नहीं, आध्यात्मिक है।

९ से १० तक श्री प० ठाकुरदत्त शर्मा, अमृतधारा फार्मेसी, देहरादून। विषय—धर्म और नीरोगता।

३१ चैत्र २००६

प्रातः—

७ से ७-३० तक सन्ध्या प्रार्थना तथा हवन यज्ञ।

७-३० से ८ तक भजन।

८ से ९ तक व्याख्यान श्री स्वामी ईश्वरानन्द महाराज।

९ से १० तक व्याख्यान श्री पं० विश्वनाथ स्वामी।

१० से ११ तक व्याख्यान श्री आनन्द स्वामी जी महाराज।

मध्यान्ह—

१ से १-३० तक भजन।

१-३० से २-३० तक व्याख्यान श्री स्वामी सत्यदेव जी परिव्राजक। विषय—हम कैसे भवसागर पार करें।

२-३० से ४-३० तक गो सम्मेलन। सभापति—माननीय डा० पंजाब राव देशमुख, कृषि मन्त्री, भारत सरकार, न्यू देहली।

रात्रि—

७-३० से ८ तक भजन।

८ से ९ तक व्याख्यान श्री पं० क्षितीश विद्यालङ्कार। विषय—प्रचार या आचार।

९ से १० तक व्याख्यान श्री पं० बुद्धदेव विद्यालङ्कार। विषय—श्रमजीवियों में फूट मत डालो।

१ वैशाख २०१०

प्रातः—

७ से ७-३० तक भजन।

७-३० से ११ तक दीक्षान्त समारोह। दीक्षान्तभाषण—माननीय श्री के.एम.मुन्शी, राज्यपाल उत्तरप्रदेश।

मध्यान्ह—

१ से २-१५ तक भजन।

२-१५ से ३-१५ तक व्याख्यान श्री प० यशःपाल सिद्धातालङ्कार। विषय—ब्रह्मचर्य का महत्व।

३-१५ से ४-३० तक व्याख्यान तथा अपील।
श्री पं०प्रियव्रत वेदवाचस्पति,आचार्य गुरुकुल कांगड़ी

रात्रि—

७-३० से ८ तक भजन।

८ से ९ तक व्याख्यान श्री पं०इन्द्र विद्यावाचस्पति। कुलपति—गुरुकुल विश्वविद्यालय कागड़ी।

९ से १० तक व्याख्यान श्री पं० प्रकाशवीर शास्त्री। विषय—गोवध निषेध और आर्य समाज।

२ वैशाख २०१०

प्रातः-

७ से ७-३० तक भजन।

७-३० से १० तक वेदारम्भ संस्कार।

मध्यान्ह-

१ से १-३० तक भजन।

१-३० से २-३० तक व्याख्यान श्री प० सुखदेव वेदवाचस्पति।

२-३० से ३ तक भजन।

३ से ४-३० तक दलितोद्धार सम्मेलन। सभापति- माननीय श्री लालबहादुर शास्त्री, मंत्री यातायात भारत सरकार।

रात्रि-

व्यायाम सम्मेलन।

इस सम्मेलन में ब्रह्मचारी अपने खेल दिखलावेंगे।

उत्सव की सूचनाएं

नये बालकों को प्रविष्ट कराने वाले महानुभाव गुरुकुल कार्यालय से फार्म मंगाकर अभी से भर कर भेज देंगे तो सुविधाजनक रहेगा। उत्सव बाजार में जिन महानुभावों ने दुकाने लेनी हों वे शीघ्र ही उत्सव मन्त्री से पत्र व्यवहार करने की कृपा करें।

भेंट की पुस्तक

श्रद्धानन्द स्मारक निधि में गुरुकुल प्रतिवर्ष एक पुस्तक स्वाध्यायशील जनों के लिए प्रकाशित करता है। इस वर्ष यह पुस्तक गुरुकुल में वेद अनुसन्धान विभाग के अन्वेषक विद्वान् श्री भगवद्दत्त वेदालङ्कार ने लिखी है। पुस्तक की छपाई प्रारम्भ हो चुकी है। गुरुकुल उत्सव पर यह पुस्तक प्राप्य होगी।

संग्रहालय

पुरातत्व संग्रहालय में जनवरी और फरवरी महीनों में दर्शकों की संख्या इस प्रकार रही—

	जनवरी	फरवरी
उत्तर प्रदेश	१२३	३८१
पंजाब	४०	४७
दिल्ली	३३	६४
मध्य प्रदेश	—	६
बिहार	२७	३६
बंगाल	११	१
मद्रास	—	१
बम्बई	४	८३
काश्मीर	—	२
हैदराबाद	४	५
राजस्थान	—	१६
ईस्ट अफ्रीका	—	५
ईस्ट पाकिस्तान	—	५
आसाम	—	२
इंगलैण्ड	—	१०
नेपाल	—	११
अन्य	४	—
	२४६	७१३

प्रकृति विज्ञान संग्रहालय

निम्नलिखित नये जन्तु इस मास में प्राप्त हुए हैं—

पेन्टासेरस—पाच भुजा वाली तारा मछली।

स्कोलियोडोन—कुत्ता मछली।

कारचेरियास—एक विशेष मछली।

जाइगेना—हथौड़े की आकृति वाली मछली।

स्केट—चौकोर आकृति की एक विशेष मछली।

समुद्री सर्प मछली (ईल) और उसका बच्चा।

एक्सोसीटस—उड़ने वाली मछली।

डेरुइस – बिच्छू मछली। जल सर्प।

एकिनीस—आचूषक मछली।

ग्रीष्म ऋतु के आरम्भ हो जाने के कारण दर्शकों की संख्या में वृद्धि हो गई है।

★

आप की सहायता

[गुरुकुल के माननीय मुख्याधिष्ठाता तथा आचार्य जी ने निम्नलिखित अपील प्रकाशनार्थ भेजी है।]

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी से आप भली प्रकार परिचित हैं। सारे भारतवर्ष में श्री स्वामी श्रद्धानन्द महाराज द्वारा स्थापित यही एक मात्र ऐसी संस्था है जिसमें भारतीय वेद आदि शास्त्रों की ऊंची से ऊंची शिक्षा के साथ-साथ आधुनिक पश्चिमी विद्याओं की भी ऊंची से ऊंची शिक्षा दी जाती है और ब्रह्मचर्य, त्याग, तपस्या, सादगी आदि विद्यार्थी जीवन के भारतीय आदर्शों को विद्यार्थियों के जीवन में ढालने का प्रयत्न किया जाता है।

युद्ध के सालों में जीवनोपयोगी वस्तुओं के बेहद महगा हो जाने के कारण गुरुकुल को हजारों रुपये का घाटा प्रतिवर्ष सहना पड़ता रहा है। युद्ध के समाप्त होने पर मंहगाई और भी बढ़ गई जिसके कारण गुरुकुल को और भी अधिक आर्थिक भार सहना पड़ा है। पश्चिमी पञ्जाब से गुरुकुल को प्रति वर्ष बहुत बड़ी राशि दान में प्राप्त हुआ करती थी। पार्टिशन के पश्चात् वह राशि अब सर्वथा अप्राप्य हो गई है। गुरुकुल की अपनी लाखों की सम्पत्ति पश्चिमी पञ्जाब में थी जो अब गुरुकुल के लिए बिलकुल निरुपयोगी हो गई है। इन कारणों से गुरुकुल का बजट बहुत अधिक घाटे में चल रहा है इस वर्ष गुरुकुल को एक लाख के लगभग घाटा होने की आशंका है।

इस धन संकट के समय में गुरुकुल विशेष रूप से आपकी सेवा में उपस्थित हो रहा है। गुरुकुल आप का है और आप गुरुकुल के हैं। जब कभी गुरुकुल ने आपसे याचना की है तभी आपसे उसको पर्याप्त राशि सहायता में प्राप्त होती रही है। पञ्जाब कारड के कारण गुरुकुल का पोषक क्षेत्र ही समाप्त हो गया है। इस संकटपूर्ण स्थिति में गुरुकुल जैसी जनता के दान पर चलने वाली संस्था आप जैसे उदार दानी महानुभावों की सहायता के बल पर ही चल सकती है। इस लिए इस आर्थिक सकट के काल में गुरुकुल आपसे विशेष सहायता चाहता है।

गुरुकुल जहां प्राचीन हिन्दू मर्यादा के अनुसार बालकों को ऊँची शिक्षा देता है वहां वह दुःखिया लोगों की सेवा का भी भारी कार्य हर साल करता है गुरुकुल के औषधालय से आस पास के ग्रामों के हजारों रोगी प्रति वर्ष मुफ्त चिकित्सा कराते हैं। अति निर्धन रोगियों को भोजन भी गुरुकुल के चिकित्सालय से ही दिया जाता है।

इस प्रकार की लोक-सेवक संस्था आपके प्रेम और सहायता की विशेष रूप से पात्र है। गुरुकुल से पुरुषार्थ निधि की रसीद बुकें मंगवाकर आप अभी से विशेष रूप से धन संग्रह के कार्य में लग जाइये। अपने सम्बन्धियों, मित्रों और परिचितों से गुरुकुल के लिए विशेष सहायता प्राप्त कीजिए। बूँद बूंद से घट भर जाता है। आप की थोड़ी थोड़ी सहायता से भी गुरुकुल को भारी राशि सहायता रूप में प्राप्त होसकेगी। आप अपने प्रयत्न से अधिक से अधिक राशि गुरुकुल के लिए एकत्रित करके भेजने का प्रयत्न करें। गुरुकुल इसके लिये सदा आपका आभारी रहेगा।

आपकी सहायता वैशाली के अवसर पर होने वाले ११, १२, १३, १४ अप्रैल ५३ से पूर्व गुरुकुल कार्यालय में पहुँच सके तो बहुत उत्तम होगा।

धन संग्रह के लिए गुरुकुल के उपाध्यायों तथा कर्मचारियों की मण्डलियां विभिन्न स्थानों में जा चुकी हैं। आशा है कि जनता उन्हें दिल खोलकर सहायता करेगी।

★

वैदिक स्वप्न विज्ञान

लेखक श्री भगवद्दत्त वेदालङ्कार, अध्यक्ष वेद अनुसन्धान विभाग,
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार।

★

कतिपय चुनी हुई सम्मतियां

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल की सम्मति

आपका स्वप्न विज्ञानलेख में 'वैदिक धर्म' में भी देखता रहा हूँ। उसने मेरा ध्यान आकर्षित किया था। उसे आपने अच्छे ढंग से लिखा है और उसमें पर्याप्त सामग्री का संकलन है। मानव जीवन के लिये यह शास्त्र बहुत ही महत्वपूर्ण है। जिस व्यक्ति के स्वप्न ठीक हैं जो शुक्र स्वप्न है वही मेरी दृष्टि में योगी है। उसी के विचार संयत और मन स्वाधीन हो गया है। खंडित असंयत स्वप्नों से मस्तिष्क अशान्त अस्थिर बना रहता है। वस्तुतः हमारे प्राचीन स्वप्न विज्ञान शास्त्र का ही प्रतिपादन आधुनिक Suggestion and Auto suggestion (सुशंसन और आत्म शंसन) इस विज्ञान में पाया जाता है।

★

डा० मङ्गलदेव शास्त्री प्रिंसिपल गवर्नमेंट संस्कृत कौलिज-बनारस की सम्मति

मुझे श्री पं० भगवद्दत्त जी वेदालङ्कार द्वारा लिखित 'वैदिक स्वप्न विज्ञान' नामक पुस्तक के कुछ स्थलों को सुनने का सुअवसर मिला था। उन स्थलों को सुनकर मुझे वास्तव में बड़ी प्रसन्नता हुई थी। पुस्तक में स्वप्न विषय में वैदिक साहित्य का दृष्टि से जो गम्भीर विवेचना की है वह सर्वथा सराहनीय है और इस विषय पर नये प्रकाश को डालने वाली है। इस विद्वत्तापूर्ण पुस्तक के लिए हम हृदय से लेखक महोदय का अभिनन्दन करते हैं।

★

मासिक सरस्वती, पत्रिका की समालोचना

'स्वप्न' मानव के लिए एक रहस्य की वस्तु आदिकाल से ही रहा है और आज भी है। यह सच है कि उसके सम्बन्ध में बहुत कुछ विवेचना हो चुकी है, फिर भी उसकी रहस्यात्मकता में तनिक भी कमी नहीं आई है। खेद की बात है कि हिन्दी में इस सम्बन्ध का साहित्य नहीं के बराबर मिलता है। प्रस्तुत पुस्तक-द्वारा लेखक ने इस अभाव की केवल पूर्ति ही नहीं की है किन्तु एक मननीय सामग्री भी उपस्थित कर दी है। वेद और उपनिषद्-साहित्य में प्राप्य स्वप्न-सम्बन्धी प्रसंगों को लेते हुए स्वप्न-विज्ञान पर खोजपूर्ण प्रकाश डालने में उसने काफी सफलता प्राप्त की है। स्वप्न का स्वरूप रात्रि और दिवा-स्वप्न, दुः स्वप्न और उसके विनाश का उपाय आदि जैसे महत्वपूर्ण विषयों का अच्छा उद्घाटन किया गया है। आशा है, पुस्तक को समुचित स्वागत हिन्दी-प्रेमियों से सुलभ होगा।

★

स्वाध्याय के लिए चुनी हुई पुस्तकें

वैदिक साहित्य

वैदिक ब्रह्मचर्य गीत श्री अभय २)
वैदिक विनय १, २, ३ भाग ,, २॥), २॥), २॥)
ब्राह्मण की गौ ,, ॥)
वैदिक अध्यात्मविद्या श्री भगवद्दत्त १।)
वैदिक स्वप्न विज्ञान ,, २)
वेदगीताञ्जली [वैदिक गीतियां] श्री वेदव्रत २)
वैदिक सूक्तियां श्री रामनाथ १॥)
वरुण की नौका [दो भाग] श्री प्रियव्रत ६)
सोम-सरोवर, सजिल्द, अजिल्द श्री चमूपति २), १॥)
अथर्ववेदीय मन्त्र-विद्या श्री प्रियरत्न १॥)
वैदिक कर्त्तव्य शास्त्र श्री धर्मदेव १॥)

धार्मिक साहित्य

सन्ध्या रहस्य श्री विश्वनाथ २)
धर्मोपदेश १, २, ३ भाग स्वा० श्रद्धानन्द, १), १) १॥)
आत्ममीमांसा श्री नन्दलाल २)
प्रार्थनावली ।) कविता मंजरी ।−)
आर्यसमाज और विचार ससार श्री चमूपति ।)
कविता कुसुमाञ्जली ।)

स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें

आहार [भोजन की पूर्ण जानकारी के लिए] ५)
लहसुन : प्याज श्री रामेश बेदी २॥)
शहद [शहद की पूरी जानकारी के लिए] ,, ३)
तुलसी [दूसरा परिवर्धित संस्करण] ,, २)
सोंठ [तीसरा परिवर्धित संस्करण] ,, १॥)
देहाती इलाज [दूसरा संस्करण] ,, १)
मिर्चे [काली, सफेद और लाल] ,, १)
त्रिफला [तीसरा संस्करण] ,, ३।)
सांपों की दुनियां ,, ५)
स्तूप निर्माण कला सचित्र सजिल्द, ३)
प्रमेह, श्वास, अर्शरोग १।)
जल चिकित्सा श्री देवराज १॥)

ऐतिहासिक ग्रन्थ

भारतवर्ष का इतिहास, तीन भाग श्री रामदेव ७)
बृहत्तर भारत [सचित्र] सजिल्द, अजिल्द ७), ६)
अपने देश की कथा सत्यकेतु १।=)
योगेश्वर कृष्ण श्री चमूपति ४)
ऋषि दयानन्द का पत्र व्यवहार ॥।)
हैदराबाद आर्य सत्याग्रह के अनुभव ।)
महावीर गेरीवाल्डी श्री इन्द्र १।)

संस्कृत साहित्य

बालनीति कथामाला [तीसरा संस्करण] १)
नीतिशतक [संशोधित] =)
साहित्य-दर्पण [संशोधित] २)
संस्कृत प्रवेशिका, प्र० भाग [चौथा संस्क०] ॥।=)
,, ,, २ भाग [तीसरा संस्करण] ।।=)
अष्टाध्यायी, पूर्वार्द्ध, उत्तरार्द्ध श्री गङ्गादत्त ७) ७)
रघुवंश संशोधित [तीन सर्ग] ।)
साहित्य-सुधासंग्रह १, २, ३ बिन्दु १।), १।), १।)
संस्कृत साहित्य पाठावली ≠)

शालोपयोगी

विज्ञान प्रवेशिका २ य भाग श्री यज्ञदत्त १।)
गुणात्मक विश्लेषण [बी. एस. सी. के लिए] २॥)
भाषा प्रवेशिका [वर्धा योजनानुसार] ॥)
आर्यभाषा पाठावली [आठवां संस्करण] २॥)
ए गाइड टु दी स्टडी ऑफ संस्कृत ट्रांसलेशन एण्ड कम्पोज़ीशन, दूसरा संस्क०, ३३६ पृष्ठ १)

पता—प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

श्री रामेश बेदी गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।
प्रकाशक—मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।